CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति शतक

जगद्गुरु

श्री कृपालु जी महाराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज
विश्व के पाँचवें मूल जगद्गुरु हैं। इनसे पूर्व केवल चार महापुरुषों को ही जगद्गुरु की उपाधि प्रदान की गई है। जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य, जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य, जगद्गुरु श्री माध्वाचार्य। इन सबके सिद्धान्तों का समन्वय करने वाले जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज के वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा अन्यान्य धर्म ग्रन्थों के असीम अलौकिक अद्वितीय ज्ञान से परिपूर्ण संस्कृत में दिये गये प्रवचन को सुनकर **काशीविद्वत्परिषत्** (भारत के ५०० मूर्धन्य शास्त्रज्ञ विद्वानों की सभा) के सभी विद्वान स्तम्भित हो गये अत: १४ जनवरी १९५७ को इन्हें **'जगद्गुरूत्तम'** की उपाधि से विभूषित किया। इनके भक्ति रस से ओतप्रोत व्यक्तित्व को देखकर उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि ये **भक्तियोगरसावतार** हैं।

याको कारन स्वयं हरि, याको प्रेरक ...
भावार्थ– वस्तुतः माया जड़ शक्ति है ...
को महानतम आत्मज्ञानी भी नहीं जीत ...
प्रमुख कारण यही है कि यह माया स्वयं श्री ...
एवं इन की ही प्रेरणाशक्ति से कार्य क...
व्याख्या – वेद कहता है यथा – मायि...

... शक्तियाँ तो
एवं परा प्रमुख हैं।
ताया है। यथा–
...रेव च।
...टधा ॥ (गीता)
...मे पराम्।
...जगत् ॥ (गीता)
...हंकार, मन, बुद्धि
... इसी परा प्रकृति
... प्रेरक श्री कृष्ण हैं
... एकः। श्वेता०
...विद्या माया, परा)
... ही तत्व मानते हैं
... शक्ति चेतन है
... हैं। यह सदा
...तंत्र हैं।

...गीत हो, महाकाल बरजोर।
... भय सोई, भाजि बच्यो रणछोर।
... को मूल हैं, इक कृष्ण भगवान
... शूल हैं, कर्म, ...
... सोइ कृष्ण ...

...य इक तत्व है, राधा तत्व प्रधान
... को दूजो रूप है, स्वयं कृष्ण भगवा...
भावार्थ– श्री वृषभानुनंदिनी राधिका जी ...
... सर्वश्रेष्ठ तत्व हैं। इन्हीं का अपर अखिल स्वरू...
श्री कृष्ण हैं। जिनका अवतार द्वापर युग में ...
व्याख्या– सर्वप्रथम यह समझना है ...
वैसे तो राधा तत्व के पूर्व के तत्व ही ...
यहाँ तक कि जो श्री राधिका के अखिल ...
... श्री राधा तत्व का पार नहीं ...

... परमध्वत राधे नाम...
...रे नँदनंदन, त...
...हाँ तक समझा जा...
...ना परमाब्रह्म कहे...
...प से केवल राधा...
...नो वदन्ति कस्मा...
...न्तुः – सर्वाणि रा...
... मायास्तां ममाम...
...ति च सर्वाणि रा...
... सम्यक् तांरा...

...नेहुं पार न पाय।
...याको प्रेरक आय ॥ ६॥
... जड़ शक्ति है। किंतु इस माया
... भी नहीं जीत सकता। इसका
... यह माया स्वयं श्री कृष्ण की है।
...क्ति से कार्य करती है।
... मायिनं तु महेश्वरम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जोइ राधा सोइ कृष्ण हैं, इन में भेद न मान
…क है ह्लादिनि शक्ति प्रभु, शक्तिमान इक जान
॥भावार्थ– श्री राधा ही का अपर अभिन्न स्वरूप श्री…
हैं। एवं श्रीकृष्ण का ही अपर स्वरूप श्री राधा हैं
क्योंकि राधा शक्ति हैं, एवं श्री कृष्ण शक्तिमान…
…ख्या – अथर्व वेदीय राधिका तापनीयोपनि…
…द की ऋचाओं ने ब्रह्मवादियों से कहा है। यथा–
…या यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थे…
…राधा कृष्ण के दो होने का तो…

अंतरंग है परा जो, सर्व समर्थ कहाय।
अति विचित्र अघटितघटनापटीयसी, मायापतिहुँ नचाय ॥८॥
भावार्थ– श्रीकृष्ण की परा शक्ति सब कुछ करने में समर्थ है…
उसे अघटित-घटना पटीयसी कहा जाता है। वह महा शक्ति…
विचित्र है कि अपने शक्तिमान भगवान् श्री कृष्ण को भी…
व्याख्या – पूर्व में बताया गया कि श्री कृष्ण पर…

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के
गुरु की
जगद्गुरु श्री
जगद्गुरु श्री
जगद्गुरु श्री
जगद्गुरु श्री
सबके सिद्धा
वाले जगद्
महाराज के
अन्यान्य धर्म
अलौकिक
संस्कृत में वि
काशीविद्वत्
मूर्धन्य शास्त्र
सभी विद्वान
जनवरी १९
'जगद्गुरूत्त
विभूषित कि
ओतप्रोत व्या
यह भी स्व
भक्तियोगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशकीय

श्री राधाकृष्ण सम्बन्धी भक्ति मार्गीय सिद्धान्तों से युक्त १०० दोहों के रूप में 'भक्ति शतक' एक अनुपम अद्वितीय ग्रन्थ है।

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज ने गूढ़तम शास्त्रीय सिद्धान्तों को भी इतनी सरलता से प्रकट किया है कि जनसाधारण भी हृदयंगम कर सकता है। दोहों के साथ साथ उनकी व्याख्या भी लिखकर आचार्य श्री ने अपनी अकारण करुणा का परिचय दिया है अन्यथा दोहों में अन्तर्निहित गूढ़ रहस्यों को समझना लौकिक बुद्धि से सर्वथा अगम्य होता। अब भावुक जिज्ञासु पाठक पूर्ण रूपेण लाभान्वित हो सकते हैं। ग्रन्थ पढ़ने के बाद तर्क कुतर्क संशय सब समाप्त हो जाते हैं तथा बुद्धि इस तथ्य को स्वीकार कर लेती है कि व्यर्थ के वाद विवाद में पड़कर समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि शास्त्रों वेदों का इतना अम्बार है कि पन्ने पलटते पलटते ही पूरी आयु बीत जायेगी।

अनन्त सिद्धान्तों का यही सार है कि सेव्य श्री कृष्ण सेवा की भावना निरन्तर बढ़ती जाय। यही अन्तिम तत्वज्ञान है।

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा वासना यह सौ ज्ञानन ज्ञान।

(भक्ति शतक)

प्रथम संस्करण- मकर संक्रान्ति १४ जनवरी १९९२
द्वितीय संस्करण- शरत्पूर्णिमा ९ अक्टूबर २००३
तृतीय संस्करण- गुरुपूर्णिमा १८ जुलाई २००८

राधा गोविन्द समिति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

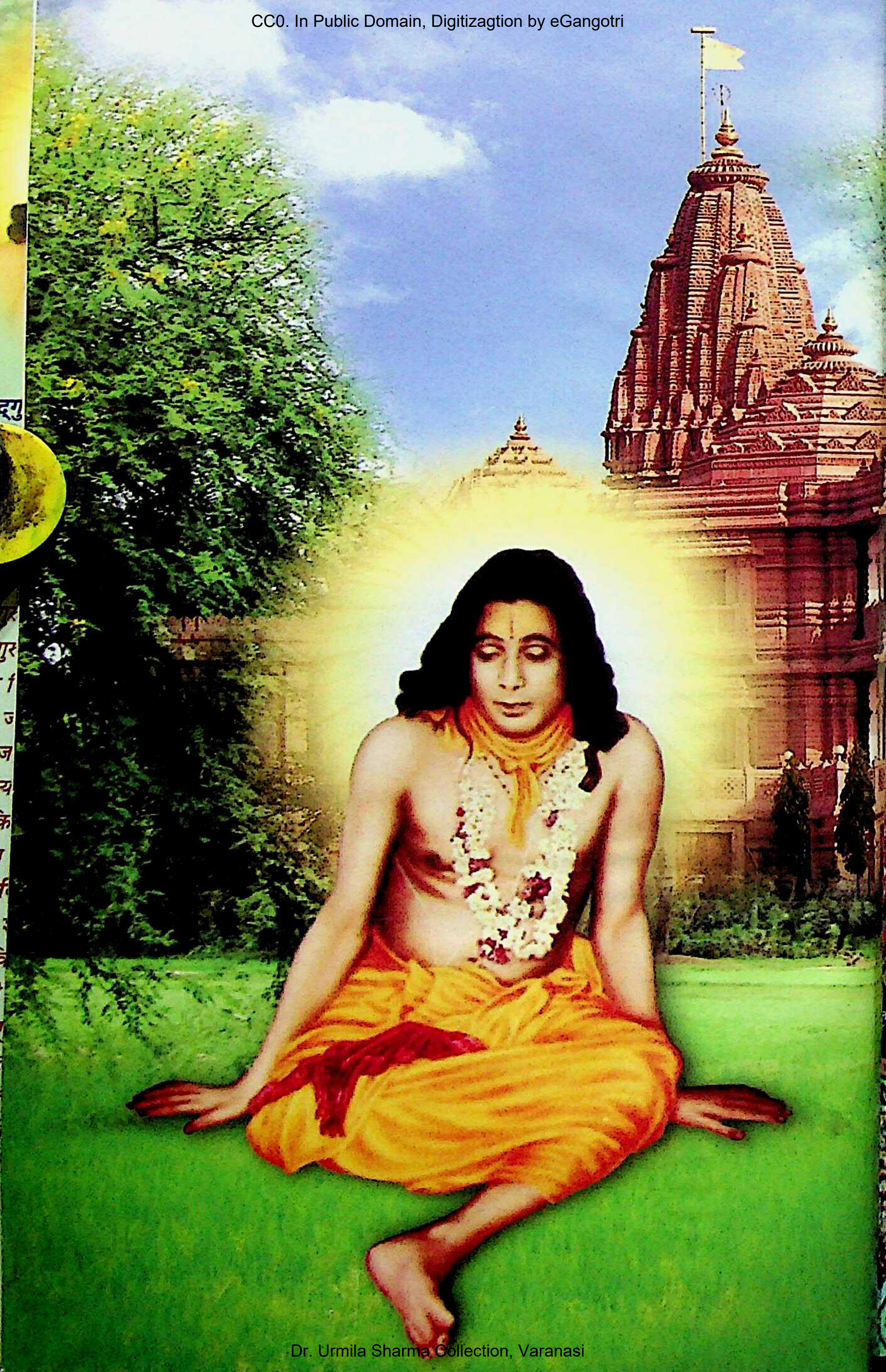

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति शतक

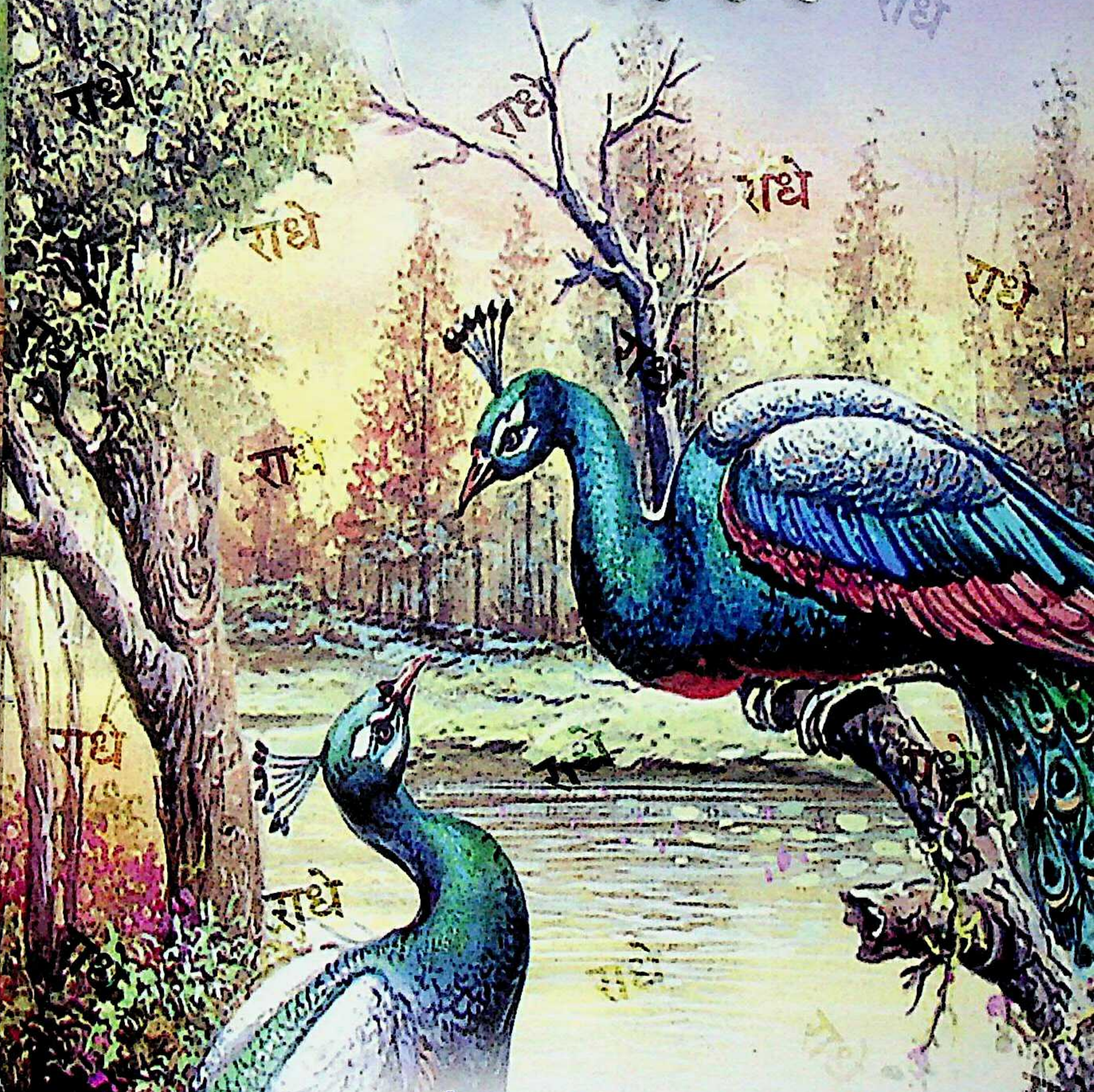

श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारीण,
वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य, निखिलदर्शनसमन्वयाचार्य,
सनातनवैदिकधर्मप्रतिष्ठापनसत्संप्रदायपरमाचार्य,
भक्तियोगरसावतार, भगवदनन्तश्रीविभूषित
जगद्गुरु १००८
स्वामी श्री कृपालु जी महाराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरु कृपालु परिषत्

भक्ति धाम

मनगढ़ (कुण्डा), प्रतापगढ़-२२९४१७ (यू. पी.) इण्डिया

फोन: ०५३४१-२३०२८२, २३०४४२

www.jagadgurukripaluparishat.org (jkp.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित © २००८

जगद्गुरु कृपालु परिषत्, भक्ति धाम, मनगढ़

इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा पूर्ण या आंशिक रूप से किसी भी रूप में इलैक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोग्राफिक अभिलेखन अथवा अन्य किसी भी प्रकार से प्रतिलिपि अथवा प्रसारित न किया जाय।

प्रकाशक:

राधा गोविंद समिति

गोलोक धाम,

सैक्टर १०, एच. ए. एफ. (बी), द्वारका, नई दिल्ली-११००७५

फोन : ०११-२५०८१०८८

e-mail : rgs108del@yahoo.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विनम्र निवेदन

साधकों के विशेष प्रेमाग्रह पर ही इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। ग्रन्थ के विषय में प्रशंसा करना कतिपय विद्वानों को अप्रिय लगेगा तथा निन्दा करना भी कतिपय भावुकों को अप्रिय लगेगा। अतः भावुक पाठकों का निर्णय ही उपयुक्त होगा। यदि एक भी साधक को इस ग्रन्थ से भक्ति-मार्ग में कुछ लाभ मिलेगा तो मैं स्वयं को कृतार्थ मानूँगा। श्री राधाकृष्ण सम्बन्धी भक्तिमार्गीय सिद्धान्तों से युक्त यह ग्रन्थ उन्हीं के चरणकमलों में समर्पित है।

जगद्गुरु कृपालुः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

CC-0. Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्वितीय इक तत्व है, राधा तत्व प्रधान।
याको दूजो रूप है, स्वयं कृष्ण भगवान॥ १ ॥

भावार्थ – श्री वृषभानुनन्दिनी राधिकाजी ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं। उन्हीं का अपर अभिन्न स्वरूप स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। जिनका अवतार द्वापर युग के अंत में हुआ था।

व्याख्या – सर्वप्रथम यह समझना है कि राधा तत्त्व क्या है? वैसे तो राधा तत्त्व के पूर्व के तत्त्व ही इन्द्रिय–मन–बुद्धि से परे हैं। यहाँ तक कि जो श्री राधिका के अभिन्न स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान् हैं, वे भी श्री राधा तत्त्व का पार नहीं पा सके। यथा –

परम धन राधे नाम अधार।
कोटिन रूप धरे नँदनंदन, तऊ न पायो पार।

फिर भी जहाँ तक समझाया जा सकता है, वहाँ तक समझाना एवं समझना परमावश्यक है। समस्त वेदों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से केवल राधा तत्त्व का ही निरूपण है। यथा –

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, कस्माद्राधिकामुपासते आदित्योऽभ्यद्रवत्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति-शतक

श्रुतयः ऊचुः -

सर्वाणि राधिकाया दैवतानि सर्वाणि भूतानि राधिकायास्तां नमामः। देवतायतनानि कंपंते राधाया हसंति नृत्यंति च सर्वाणि राधा दैवतानि .... न यां पुराणानि वदंति सम्यक् तां राधिकां देवधात्रीं नमामः। जगद्भर्तुर्विश्वसंमोहनस्य श्रीकृष्णस्य प्राणतोऽधिकामपि। वृंदारण्ये स्वेष्टदेवीं च नित्यं तां राधिकां वनधात्रीं नमामः। यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः। यस्या अंके विलुण्ठन् कृष्णदेवो गोलोकाख्यं नैव सस्मार धामपदं सांशा कमला शैलपुत्री तां राधिकां शक्तिधात्रीं नमामः।

(*अथर्ववेदीयराधिकातापनीयोपनिषद्*)

अर्थात् ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के चित्त में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि अन्य महाशक्तियों की उपासना छोड़कर श्री राधिका की ही उपासना क्यों की जाती है? यह प्रश्न उत्पन्न होते ही एक महान् तेज:पुंज प्रकट हुआ। वह महान् तेज:पुंज श्रुतियाँ ही थीं। उन श्रुतियों ने बताया कि समस्त देवी देवताओं में देवत्व शक्ति श्री राधा से ही आविर्भूत होती है। अत: हम श्रुतियाँ भी श्री राधा को नमन करती हैं। श्री राधा जी के भय से समस्त दैवी महाशक्तियाँ थर-थर काँपती हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी श्री राधा जी के भृकुटि विलास को भयभीत होकर देखते रहते हैं। जिन श्री राधा जी का हम श्रुतियाँ एवं सांख्य, योग, वेदान्त आदि भी पार नहीं पा सकते। अर्थात् सम्यक् प्रतिपादन नहीं कर सकते उनको हम प्रणाम करते हैं। जगत्पति विश्वविमोहन नँदनन्दन की प्राणाधिकप्रिया, परमोपास्या एवं शरणागत को अभय देने वाली श्री राधा को हम सब नमस्कार करते हैं।

प्रेम परायण आनन्दकन्द सच्चिदानन्द ब्रजेन्द्रनन्दन भी रासलीला में जिनकी चरण-रज को मस्तक पर धारण करते हैं, एवं जिनके प्रेम-प्रभाव से अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुरली और लकुटी आदि दिव्य विभूतियों को भुला देते हैं। यहाँ तक कि स्वयं, श्री राधा जी के हाथ बिक जाते हैं। हम सब उनकी वन्दना करते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी जिन श्री वृषभानुनन्दिनी राधा जी की अंगरूपी शय्या के परमानन्द में अपने अपरिमेय सच्चिदानन्द स्वरूप तथा दिव्य चिन्मय धाम गोलोक को भी भुला देते हैं। महालक्ष्मी, पार्वती आदि, जिन श्री राधा जी की अंश स्वरूपा शक्तियाँ मात्र हैं, उन महाशक्तियों की भी मूल महा महाशक्ति स्वरूपा श्री राधा जी को नमस्कार है।

राधा शब्द का अर्थ ही राधातत्त्व की श्रेष्ठता का परिचय प्रदान कर देता है। यथा - स्वादिपरस्मैपदी 'राध्' धातु पाणिनीय पाठ में है (राध् साध् संसिद्धौ)। उस राध् धातु से कर्म में 'अ' प्रत्यय करने से राधा शब्द बनता है। जिसका अर्थ है समस्त की आराध्या। वेद कहता है -

कृष्णेन आराध्यते इति राधा

(*ऋग्वेदीयराधिकोपनिषत्*)

तात्पर्य यह कि अनन्त ब्रह्माण्डात्मक विश्व प्रपंच एवं ब्रह्मादि ब्रह्माण्डनायकों के परमाराध्य परब्रह्म श्रीकृष्ण भी श्री राधा तत्त्व की निरन्तर आराधना करते हैं। अतः राधा तत्त्व का सर्वोत्कृष्टत्व निर्विवाद सिद्ध हो गया।

इसके अतिरिक्त अनेक वेद मंत्रों में राधा तत्त्व का निरूपण है।

यथा-

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः सवितारं नृचक्षसम्।

(ऋग्वेद १-२२-७)

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते विभूतिरस्तु।

(ऋग्वेद १-३०-५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते पिवा त्वस्य गिर्वणः

(ऋग्वेद ३-५१-१०)

केवल ऋग्वेद में ही राधा शब्द का प्रयोग सातों विभक्तियों में हुआ है। यथा–

राधः	(ऋग्वेद १-९-५)
राधांसि	(ऋग्वेद १-२२-८)
राधसा	(ऋग्वेद १-४८-१४)
राधसे	(ऋग्वेद १-१७-७)
राधसः	(ऋग्वेद १-१५-५)
राधसाम्	(ऋग्वेद ८-९०-२)
राधसि	(ऋग्वेद ४-३२-२१)

सभी ऋग्वेदीय मंत्र हैं।

सारांश यह कि सर्वदेवदेवेश्वर तो श्रीकृष्ण ही हैं। यथा –

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।

(श्वेता. ६-७)

किन्तु राधा जी, उन परब्रह्म परात्पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की भी आराध्या हैं। अतः ब्रह्माण्ड पुराण में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – '**राधैवाराध्यते मया,**।

अर्थात् मैं केवल राधा तत्त्व की ही आराधना करता हूँ। अन्यान्य पुराणों में भी श्री राधा तत्त्व का निरूपण है। यथा – पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, देवी-भागवत पुराण, आदिपुराण, स्कन्द पुराण, मत्स्य पुराण आदि। विस्तार के भय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से उन सब का उद्धरण नहीं दे सकते। पुराणों के अतिरिक्त वृहत् गौतमीय तंत्र, नारद पांचरात्र, गर्गसंहिता आदि में भी राधा तत्त्व का विशद विवेचन है। आदि जगद्गुरु शंकर, निम्बार्क, वल्लभ इत्यादि समस्त वैष्णवाचार्यों का तो राधा तत्त्व प्राणस्वरूप है ही। राधा तत्त्व के निरूपण का स्वरूप सभी आचार्यों का अभिन्न होते हुये भी भिन्न-भिन्न सा है। कुछ संशयात्मा तार्किकों को यह संशय होता है कि समस्त पुराणों में मूर्धन्य भागवत पुराण में राधा तत्त्व का निरूपण नहीं है इसके कई विशिष्ट कारण हैं। फिर भी राधा तत्त्व का निर्देश भागवत में बरबस हो ही गया है। यथा -

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥

(*भाग. १०-३०-२८*)

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।

(*भाग. २-४-१४*)

उपर्युक्त दोनों स्थलों में राधा नाम का स्पष्ट उल्लेख है। एक बात प्रमुख रूप से विचारणीय है कि श्रीकृष्ण की भाँति श्री राधा जी के भी अनन्त नाम हैं। अतः अन्य स्थलों पर अन्य पर्यायवाची नामों से स्पष्ट उल्लेख भी है। यथा-

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः।
कुचकुंकुमगंधाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः॥

(*भाग. १०-८३-४२*)

इस स्थल पर श्री राधा जी का नाम 'श्री' शब्द से निर्दिष्ट है। सारार्थ दर्शिनी टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती ने विस्तारपूर्वक समझाया है। जिसका तात्पर्य यह है कि द्वारिकास्थ महिषी वृंद ने श्री राधा के कुच कुंकुम युक्त चरण रज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ही स्वकामना प्रदर्शित की है। यद्यपि 'श्री' शब्द महालक्ष्मी के हेतु भी प्रयुक्त होता है, किन्तु महालक्ष्मी रूपा रुक्मिणी की चरण-रज तो द्वारिका में सदा प्राप्त ही थी। अत: यह 'श्री' शब्द केवल राधा का ही बोधक हो सकता है।

इसी प्रकार पुनः भागवत में निरूपण प्राप्त है। यथा -

आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः।

(*भाग.* १०-३०-२)

यहाँ भी राधा नाम का निर्देश रमा शब्द से किया गया है। वृहत् वैष्णवतोषिणी टीकाकार सनातन गोस्वामी ने इस पर विशद विवेचना की है। जिसका सारांश यह है कि रास से श्रीकृष्ण के अंतर्धान हो जाने पर दिव्य प्रेमावेश में गोपियों ने श्रीकृष्ण की ही भूतपूर्व लीलाओं का अनुगमन किया। यदि रमा (लक्ष्मी) पति महाविष्णु को माना जायगा तो वे तो लीला परिकर रहित होते हैं। फिर उनके साथ गोपियों की कभी कोई लीला ही नहीं हुई।

इसी प्रकार पुनः भागवत में रमा शब्द आया है। यथा -

रेमे रमेशो ब्रजसुंदरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिंबबिम्बः।

(*भाग.* १०-३३-१७)

यहाँ भी रमा शब्द राधा के हेतु ही आया है। क्योंकि राधारमण ने ही ब्रजांगनाओं के साथ रमण किया था।

इतना ही नहीं वरन् अन्य स्थलों पर भी कहीं वृन्दा नाम से, कहीं इन्दिरा नाम से, कहीं कान्ता नाम से, कहीं प्रिया नाम से, कहीं आत्मा नाम से, कहीं लक्ष्मी नाम से भी राधा नाम का उल्लेख प्राप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर भी यदि संशयकर्ता को संतोष न हुआ हो तो और भी कारण सुनें। जब रास का प्रकरण शुकदेव जी सुनाने लगे तब परीक्षित ने बार-बार संसारी वासनायुक्त समझ कर रास पर आक्षेप किया। यह भी नहीं सोचा कि यदि रास में वासना का लेश भी होता तो आत्माराम पूर्णकाम परमनिष्काम जन्मजात परमहंस शुकदेव क्यों स्वीकार करते। अतः शुकदेव जी ने आगे रास का प्रकरण ही समाप्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त अभिधा (स्पष्ट उल्लेख) से तो लक्षणा (संकेत में) रीति से नामादि निर्वचन अधिक महत्व का माना गया है। और वह तो है ही। इसी आशय से आचार्यों ने कहा है- यथा -

यथा प्रियंगु पत्रेषु गूढ़मारुण्यमिष्यते।
श्रीमद्भागवतेशास्त्रे राधिका तत्वमीदृशम्॥

(सूक्ति)

अर्थात् जैसे मेहँदी के हरे पत्ते में लालिमा प्रकट रूप से नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु हाथ में लगाने से स्पष्ट प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भागवत संहिता में भी राधा नाम बार बार संकेत से ही लिखा गया है।

रसिकों की यह भी मान्यता है कि यदि शुकदेव जी राधा नाम का स्पष्ट उल्लेख करते तो उनको छह मास की समाधि हो जाती। जबकि परीक्षित का कल्याण सात दिन में ही करना अनिवार्य था। यथा -

श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।

(सूक्ति)

अस्तु उपर्युक्त वेदादि प्रमाणों एवं युक्तियों से राधा तत्त्व अनादि अद्वितीय सिद्ध है। अद्वितीय शब्द का प्रयोग एवं एक शब्द का प्रयोग देखकर कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ही स्वकामना प्रदर्शित की है। यद्यपि 'श्री' शब्द महालक्ष्मी के हेतु भी प्रयुक्त होता है, किन्तु महालक्ष्मी रूपा रुक्मिणी की चरण-रज तो द्वारिका में सदा प्राप्त ही थी। अत: यह 'श्री' शब्द केवल राधा का ही बोधक हो सकता है।

इसी प्रकार पुनः भागवत में निरूपण प्राप्त है। यथा -

आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः।

(*भाग. १०-३०-२*)

यहाँ भी राधा नाम का निर्देश रमा शब्द से किया गया है। वृहत् वैष्णवतोषिणी टीकाकार सनातन गोस्वामी ने इस पर विशद विवेचना की है। जिसका सारांश यह है कि रास से श्रीकृष्ण के अंतर्धान हो जाने पर दिव्य प्रेमावेश में गोपियों ने श्रीकृष्ण की ही भूतपूर्व लीलाओं का अनुगमन किया। यदि रमा (लक्ष्मी) पति महाविष्णु को माना जायगा तो वे तो लीला परिकर रहित होते हैं। फिर उनके साथ गोपियों की कभी कोई लीला ही नहीं हुई।

इसी प्रकार पुनः भागवत में रमा शब्द आया है। यथा -

रेमे रमेशो ब्रजसुंदरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिंबबिम्बः।

(*भाग. १०-३३-१७*)

यहाँ भी रमा शब्द राधा के हेतु ही आया है। क्योंकि राधारमण ने ही ब्रजांगनाओं के साथ रमण किया था।

इतना ही नहीं वरन् अन्य स्थलों पर भी कहीं वृन्दा नाम से, कहीं इन्दिरा नाम से, कहीं कान्ता नाम से, कहीं प्रिया नाम से, कहीं आत्मा नाम से, कहीं लक्ष्मी नाम से भी राधा नाम का उल्लेख प्राप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर भी यदि संशयकर्ता को संतोष न हुआ हो तो और भी कारण सुनें। जब रास का प्रकरण शुकदेव जी सुनाने लगे तब परीक्षित ने बार-बार संसारी वासनायुक्त समझ कर रास पर आक्षेप किया। यह भी नहीं सोचा कि यदि रास में वासना का लेश भी होता तो आत्माराम पूर्णकाम परमनिष्काम जन्मजात परमहंस शुकदेव क्यों स्वीकार करते। अतः शुकदेव जी ने आगे रास का प्रकरण ही समाप्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त अभिधा (स्पष्ट उल्लेख) से तो लक्षणा (संकेत में) रीति से नामादि निर्वचन अधिक महत्व का माना गया है। और वह तो है ही। इसी आशय से आचार्यों ने कहा है- यथा -

यथा प्रियंगु पत्रेषु गूढ़मारुण्यमिष्यते।
श्रीमद्भागवतेशास्त्रे राधिका तत्वमीदृशम्॥

(सूक्ति)

अर्थात् जैसे मेहँदी के हरे पत्ते में लालिमा प्रकट रूप से नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु हाथ में लगाने से स्पष्ट प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भागवत संहिता में भी राधा नाम बार बार संकेत से ही लिखा गया है।

रसिकों की यह भी मान्यता है कि यदि शुकदेव जी राधा नाम का स्पष्ट उल्लेख करते तो उनको छह मास की समाधि हो जाती। जबकि परीक्षित का कल्याण सात दिन में ही करना अनिवार्य था। यथा -

श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।

(सूक्ति)

अस्तु उपर्युक्त वेदादि प्रमाणों एवं युक्तियों से राधा तत्त्व अनादि अद्वितीय सिद्ध है। अद्वितीय शब्द का प्रयोग एवं एक शब्द का प्रयोग देखकर कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शंका हो सकती है। उसका निराकरण यह है कि अद्वितीय अर्थात् जिसके समान अथवा जिससे बड़ा दूसरा तत्त्व न हो। एक का अभिप्राय यह है कि शेष जो भी तत्त्व हैं, वे सब उन्हीं श्री राधा से ही आविर्भूत हैं। इसी आशय से स्वयं श्री राधा ने कहा है। यथा –

ममैव पौरुषं रूपं गोपिका जनमोहनम्।

(*ब्रह्मवैवर्तपुराण*)

अर्थात् मेरे पुरुष शरीर वाले रूप को भगवान् कृष्ण कहते हैं। जो गोपियों के प्राण कहे जाते हैं।

वस्तुतस्तु राधाकृष्ण एक ही सत्ता के दो रूप एवं दो नाम हैं। लीला के हेतु ही दो रूप बनाये हैं। यह जीवों पर कृपा करने के उद्देश्य से किया गया है। एक भावुक भक्त कहता है, यथा –

देहस्तेऽहं त्वमपि च ममासीति हन्तप्रवादः,
प्राणस्तेऽहं त्वमपि च ममासीति तावत्प्रलापः।
त्वं मे तेस्यामहमपि च तद्बाधितं साधुराधे,
नो युक्तौ नौ प्रणयविषये युष्मदस्मत्प्रयोगः॥

अर्थात् राधाकृष्ण के विषय में दो सत्ता का ज्ञान घोर अज्ञान है। निर्गुण निर्विशेष निराकार ब्रह्म, राधारूपी शक्ति से ही सगुण सविशेष साकार होता है। अतः राधा तत्त्व ही सर्वप्रमुख तत्त्व है। दर्शन शास्त्रों की दृष्टि से भी शक्ति (राधा) एवं शक्तिमान् (श्रीकृष्ण) में भेद नहीं होता।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जोइ राधा सोइ कृष्ण हैं, इनमें भेद न मान।
इक हैं ह्लादिनी शक्ति अरु, शक्तिमान इक जान॥ २॥

भावार्थ - श्री राधा ही का अपर अभिन्न स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। एवं श्रीकृष्ण का ही अपर स्वरूप श्री राधा हैं। क्योंकि राधा शक्ति हैं, एवं श्रीकृष्ण शक्तिमान् हैं।

व्याख्या - अथर्ववेदीय राधिकातापनीयोपनिषत् में वेद की ऋचाओं ने ब्रह्मज्ञानियों से कहा है। यथा-

ये यं राधायश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।

अर्थात् श्री राधाकृष्ण के दो होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, उनके दो देह भी नहीं है। एक ही सत्ता एवं वही सत्तास्वरूप ही एक ही देह भी है। किंतु लीला के हेतु दो स्वरूप धारण किये रहते हैं।

इसी प्रकार ऋग्वेदीय राधिकोपनिषत् में भी इसी आशय से कहा है। यथा -

ये यं राधायश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।

सनत्कुमार संहिता में भी कहा गया है। यथा -

राधिका कृष्ण रूपं च, कृष्णो राधा स्वरूपकः।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में इस पर विस्तृत विवेचन है। यथा -

यथा क्षीरे च धावल्यं, दाहकता च हुताशने,
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि ममस्थितिः।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् एक बार श्री राधा जी ने लीला में श्रीकृष्ण से पूछा कि मैं तुम्हारे वियोग में कैसे जीवित रह सकूँगी। तब श्रीकृष्ण ने उपर्युक्त उदाहरण देकर कहा था कि वियोग तो दो तत्त्वों में हुआ करता है। मुझ से वियुक्त तो प्राकृत जगत् भी नहीं हो सकता। फिर हमारा तुम्हारा सम्बन्ध तो ऐसा है जैसे दूध में श्वेतिमा। भला दूध की सफेदी कभी दूध से पृथक् हो सकती है? पुनः कहा कि जैसे आग में दाहकता। अर्थात् आग से कभी दाहकता पृथक् नहीं हो सकती। इसी प्रकार पृथिवी से गंध, जल से शीतलता कभी वियुक्त हो सकती है? ठीक उसी प्रकार हम दोनों एक थे। एक हैं। एक रहेंगे।

यदि कोई शंका करे कि दूध में श्वेतिमा पृथक् नहीं होती किंतु राधा कृष्ण तो पृथक् होते रहते हैं। इसका विज्ञान यह है कि दूध या आग या पृथिवी या जल जड़ तत्त्व हैं। अतः वे पृथक् नहीं होते। जीवगण भी अणुचित् हैं किंतु राधा कृष्ण तो विभुचित् हैं। उनके पास अघटित घटना पटीयसी योगमाया की शक्ति है। वह शक्ति चैतन्य है। एवं कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ है। अतः जब जैसी इच्छा करें, वैसी ही क्रिया होने लगती है। पुनः वेदों का ही डिंडिम घोष है। यथा –

स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्

(*बृहदारण्य. १-४-३*)

तंत्रों में भी वेदों का ही समर्थन किया है। यथा –

एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधा माधव रूपकम्।

(*सम्मोहन तंत्र गो.स.ना.*)

पुनः शक्तिस्वरूपा राधा जी हैं। एवं शक्तिमान् श्रीकृष्ण हैं। वेद कहता है –

तस्य शक्तयस्त्वनेकधा। ह्लादिनी-संधिनी ज्ञानेच्छा क्रियाद्याः बहुविधाः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तय:। तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्गभूता राधा कृष्णेन आराध्यते इति राधा कृष्णं समाराधयति सदा।

(ऋग्वेदीय राधिकोपनिषद्)

विष्णु पुराण भी कहता है। यथा –

विष्णुशक्ति: परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

(विष्णु पुराण ६-७-६१)

अर्थात् परात्पर श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं। उनमें सर्वाधिक अन्तरंग शक्ति का नाम ह्लादिनी शक्ति है। वही श्री राधा हैं। कोई भी शक्ति अपने शक्तिमान् से पृथक् नहीं हो सकती। वस्तुत: शक्ति एवं शक्तिमान् दो तत्त्व ही नहीं होते। चैतन्यदेव ने सनातन को विस्तार से समझाया है। यथा –

चिच्छक्ति स्वरूपशक्ति अन्तरंगा नाम।
ताहार वैभवानन्त वैकुण्ठादि धाम॥

(चै.च.)

अर्थात् माया शक्ति की परिणिति अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। जीव-शक्ति की परिणिति अनन्त जीव विशेष हैं। एवं चित् शक्ति जिसे स्वरूप-शक्ति भी कहते हैं, उसकी परिणिति दिव्य चिन्मय अनन्त बैकुण्ठादि धाम हैं। यह चित् शक्ति चेतन है। माया-शक्ति के समान जड़ नहीं है। इस चित् या स्वरूप शक्ति या योगमाया की शक्ति में सब कुछ करने तथा कुछ न करने एवं उलटा करने की भी शक्ति है।

इस चित्त शक्ति के ३ भेद हैं। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत् चित् आनन्द कृष्णेर स्वरूप, अतएव स्वरूप शक्ति हय तिनरूप
(चै. च.)

अर्थात् यह स्वरूप शक्ति (चित्) सत्स्वरूप, चित्स्वरूप एवं आनन्द स्वरूप हो जाती है। पुनः चैतन्यदेव आगे कहते हैं। यथा -

आनन्दांशे ह्लादिनी सदंशे संधिनी
चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानी (चै. च.)

अर्थात् सदंश की अधिष्ठात्री शक्ति को संधिनी शक्ति एवं चिदंश की अधिष्ठात्री शक्ति को संवित् शक्ति तथा आनन्द शक्ति की अधिष्ठात्री शक्ति को ह्लादिनी शक्ति कहते हैं। इनमें सत् शक्ति द्वारा (संधिनी द्वारा) श्रीकृष्ण अपनी सत्ता की रक्षा करते हैं। तथा संवित् शक्ति के द्वारा सदा सर्वज्ञ बने रहते हैं। एवं ह्लादिनी शक्ति के द्वारा सदा आनन्दमय रहते हैं। इतना ही नहीं वरन् इन शक्तियों द्वारा ही अपने भक्तों की भी रक्षा, ज्ञान एवं आनन्द प्रदान करने का कार्य करते हैं। वेद कहता है -

रसो वै सः रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
(तैत्तिरीयो. २-७)

अर्थात् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं, उनको प्राप्त करके ही जीव आनन्दमय होता है। अन्य कोई उपाय नहीं है।

उपर्युक्त संधिनी शक्ति के गुण संवित् शक्ति में, संवित् शक्ति के गुण ह्लादिनी शक्ति में रहते हैं। इन तीनों ही शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ शक्ति ह्लादिनी शक्ति ही है। इसी शक्ति की परिणिति का नाम प्रेम है। प्रेम की ही अन्तिम परिणिति महाभाव है। यही महाभाव रूपा महाशक्ति ही राधा हैं। राधा ही समस्त शक्तियों की अध्यक्षा हैं। संधिनी शक्ति के सार अंश का नाम शुद्ध सत्त्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा–

संधिनी सार अंश शुद्धसत्व नाम
भगवानेर सत्ता हय जाहाते विश्राम (चै. च.)

माता पिता स्थान गृह शय्यासनआर
ए सब कृष्णेर शुद्ध सत्व विकार (चै. च.)

उपर्युक्त शुद्ध सत्त्व की ही परिणिति, भगवान् श्रीकृष्ण की सत्ता, उनके धाम, उनके परिकर, उनके लीला–उपकरण हैं। इसी आशय से विष्णु पुराण कहता है। यथा –

ह्लादिनी संधिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥

(विष्णु पु. १-१२-६८)

अस्तु श्री राधा तत्त्व एवं श्रीकृष्ण तत्त्व तो एक है ही, किंतु तटस्थ शक्ति स्वरूप अनन्त ब्रह्माण्ड के समस्त मायाधीन जीव तथा बहिरंगा शक्ति रूपा माया भी श्रीकृष्ण से पृथक् सत्ता वाली नहीं है। जीव शक्ति में नित्य स्थित श्रीकृष्ण जीवों को जीवन प्रदान करते हैं। यथा वेद कहता है –

चेतनश्चेतनानाम्। *(श्वेता. ६-१३)*

इसी प्रकार जड़ शक्ति माया भी श्रीकृष्ण की शक्ति से ही कार्य करती है। तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण से भिन्न तो जीव एवं माया भी नहीं हैं। अतः वेदव्यास कहते हैं। यथा –

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(*भाग.* १-२-११)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारांश यह कि '**एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म**' (*छान्दो. ६-२-१*) इस श्रुति के अनुसार राधाकृष्ण के अतिरिक्त कोई शक्ति, या शक्तिमान् नहीं है।

राधाकृष्ण एक आत्मा दुई देहधरि,
अन्योन्य विलसे रस आस्वादन करि (चै. च.)

अस्तु महाभावरूपा महाशक्ति राधा एवं सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण एक ही हैं। शेष सब इन्हीं में अंतर्निहित हैं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

शक्तिमान की शक्तियाँ, अगनित यदपि बखान।
तिन महँ 'माया, 'जीव, अरु 'परा, त्रिशक्ति प्रधान॥ ३ ॥

भावार्थ – शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की शक्तियाँ तो अनन्त हैं, किंतु उनमें जीव तथा माया एवं परा प्रमुख हैं।

व्याख्या – गीता में श्रीकृष्ण ने बताया है। यथा –

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(*गीता ७-४*)

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(*गीता ७-५*)

अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, मन, बुद्धि यह अष्टविधा अपरा प्रकृति माया है। दूसरी परा प्रकृति जीव है। इन दोनों के नियामक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शासक प्रेरक श्रीकृष्ण हैं वेद कहता है। यथा –

क्षरात्मानावीशते देव एकः। *(श्वेता. १-१०)*

यही कारण है कि कुछ दार्शनिक शक्ति (जीव, माया, परा) एवं शक्तिमान् की अभिन्नता मानते हुए एक ही तत्त्व मानते हैं। किंतु मायिक शक्तियाँ जड़ हैं। जबकि पराशक्ति चेतन है उसी पराशक्ति का परात्परा स्वरूप राधा हैं। यह सदा ध्यान रहे कि समस्त शक्तियाँ श्रीकृष्ण के परतंत्र हैं। केवल श्रीकृष्ण के संकल्प से ही चेतन बन कर अपना अपना कार्य करती हैं। जीव तटस्थ है। क्योंकि यह स्वरूप शक्ति के अन्तर्भुक्त भी नहीं है एवं जड़ माया के भी अन्तर्भुक्त नहीं है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जीव तटस्था शक्ति पर, माया कर अधिकार।
वस्तुतस्तु यह दास है, स्वामी नंदकुमार॥ ४॥

भावार्थ – जीव-शक्ति, तटस्थ-शक्ति है। किंतु अनादिकाल से गुणमयी जड़ माया का अधिकार है। जबकि जीव का वास्तविक स्वरूप अपने अंशी शरण्य श्यामसुन्दर की दासता ही है।

व्याख्या – यह जीव शक्ति, स्वरूप शक्ति एवं जड़माया शक्ति दोनों के ही अन्तर्भुक्त नहीं है। जीव तो जीवशक्ति विशिष्ट श्रीकृष्ण का अंश है। अतः गीता कहती है। यथा –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। *(गीता १५-७)*

रामायण – यथा – **ईश्वर अंश जीव अविनाशी।**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदों ने तो स्पष्ट कहा है। यथा –

दिव्यो देव एको नारायणो माता पिता भ्राता।
निवासः शरणं सुहृत् गतिर्नारायण इति।।

(सुवाल श्रुति-छठवाँ मंत्र)

अर्थात् श्रीकृष्ण केवल जीव के अंशी ही नहीं हैं। वरन् वे ही माता, पिता, भ्राता, सखा, गति सब कुछ हैं।

कुछ लोग जीव के अंश होने में शंका करते हैं कि जीव कैसे ब्रह्म का अंश हो सकता है? क्योंकि ब्रह्म तो मायाधीश है, जबकि जीव मायाधीन है। फिर ब्रह्म कभी भी मायाधीन हो ही नहीं सकता। एक प्रश्न और भी होता है कि ब्रह्म तो अखंड है। अतः उसके टुकड़े हो ही नहीं सकते। उनका समाधान यह है –

तत्वं च तस्य तच्छक्तित्वात् सिद्धम् *(गोविंदभाष्य)*

अर्थात् वास्तव में ब्रह्म की शक्ति होने के कारण ही अंश कहा जाता है। पुनः प्रश्न होता है कि जीव कौन सी ब्रह्म की शक्ति का अंश है?

ब्रह्म की दो ही शक्तियाँ प्रमुख हैं। एक परा या अन्तरंगा शक्ति, दूसरी बहिरंगा माया शक्ति। अब इन दोनों शक्तियों पर विचार कीजिये। ब्रह्म की अंतरंगा स्वरूप शक्ति का अंश तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि ब्रह्म तो सर्वस्त्रष्टा, सर्वनियंता एवं सर्वव्यापक है। और बहिरंगा शक्ति माया का भी अंश नहीं हो सकता, क्योंकि माया तो जड़ है। जीव चेतन है। यदि कहो कि जीव अपने अंशी ब्रह्म से अभिन्न है, तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि जीव तो काल, कर्म, गुणादि के आधीन है। अतः इन दोनों शक्तियों का अंश नहीं हो सकता। जीव तो तीसरी शक्ति का अंश है। वह है जीव शक्ति। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीव शक्ति विशिष्टस्यैव तव जीवोंशः न तु शुद्धस्य।

(प. सं. जीवगोस्वामी)

अर्थात् शुद्ध ब्रह्म का अंश नहीं है वरन् जीव शक्ति विशिष्ट ब्रह्म का अंश है। पुनः यह प्रश्न आता है कि स्वरूप शक्ति तो सदा श्रीकृष्ण में ही स्थित रहती है, जबकि जीव शक्ति नहीं रहती। इसका समाधान यह है कि स्वरूप शक्ति एवं जीव शक्ति तथा अन्य समस्त शक्ति अपने शक्तिमान् में ही स्थित रहती हैं। पुनः प्रश्न पैदा होता है कि जब स्वरूप शक्ति एवं जीव शक्ति दोनों ही श्रीकृष्ण में स्थित हैं, तो स्वरूप शक्ति का प्रभाव जीव शक्ति पर क्यों नहीं हुआ ? उसका उत्तर यह है कि जैसे श्रीकृष्ण के ही अभिन्न स्वरूप ब्रह्म में सब शक्तियों का विकास नहीं होता, ऐसे ही जीव पर भी स्वरूप शक्ति का प्रभाव नहीं होता। अस्तु जीव मात्र, जीव शक्तियुक्त श्रीकृष्ण के ही अंश हैं।

यह अंश भी दो प्रकार का होता है। १- स्वांश, २-विभिन्नांश।

स्वांश - समस्त भगवान् के अवतार स्वांश हैं। ये सब स्वरूप शक्ति के नियामक हैं। एवं भगवत्स्वरूप ही हैं।

विभिन्नांश -विभिन्नांश भी दो प्रकार के होते हैं -

१ - नित्यसिद्ध जीव - ये सब सदा से मायातीत परिकर रूप हैं।

२ - अनादि मायाबंद्ध जीव - ये सब सदा से मायाधीन हैं। अनादि का अभिप्राय यह है कि कभी माया से मुक्त नहीं था। माया के अधिकार का कारण, श्रीकृष्ण से बहिर्मुख होना है। भागवत में बड़ा सुंदर चित्रण है। यथा-

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥

(भाग. ११-२-३७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावार्थ – यह कि अनादिकाल से जीव अपने शरण्य श्रीकृष्ण से बहिर्मुख है। अतः माया ने अधिकार कर रखा है। जब कभी सन्मुख हो जायगा तो कृतार्थ हो जायगा। वेद कहता है। यथा –

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।

(श्वेता. ४-७, मुण्डको. ३-१-२)

वेदव्यास ने स्पष्ट कहा है। यथा –

दास भूतमिदं तस्य जगत्स्थावर जंगमम्।
श्रीमन्नारायणः स्वामी जगतांप्रभुरीश्वरः॥

(पद्म पुराण)

पुनः

दासभूतो हरेरेव नान्यस्यैव कदाचन।

(पद्म पुराण)

सारांश यह कि जीव चाहे जिस प्रकार का अंश या शक्ति हो किंतु वास्तव में यह श्रीकृष्ण का नित्यदास ही है। चैतन्यदेव ने कहा –

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।

(चै.च.)

गीता भी –

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।

(गीता ९-१८)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण बहिर्मुख जीव कहँ, माया करति अधीन।
ताते भूल्यो आपु कहँ, बन्यो विषय-रस-मीन॥ ५॥

भावार्थ – अनादिकाल से जीव अपने स्वामी से विमुख है। अतएव माया ने वश में कर लिया है। परिणामस्वरूप जीव स्वयं को देह मानने लगा एवं संसारी विषयों में आसक्त हो गया।

व्याख्या – कुछ भोले भाले ज्ञानाभिमानी माया तत्त्व को ही नहीं मानते। अतः माया तत्त्व पर गंभीर विचार कर लीजिये। वेद कहता है। यथा –

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

(श्वेता. ४-१०)

अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः।

(श्वेता. ४-९)

ब्रह्मैव स्वशक्तिं प्रकृत्यभिधेयां आश्रित्य लोकान्सृष्ट्वा....।

और भी –

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

(श्वेता. ४-५)

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।

(श्वेता. १-१०)

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥

(श्वेता. ५-१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मसूत्र भी- **ईक्षतेर्नाशब्दम्।** *(ब्रह्मसूत्र १-१-५)*

रचनानुपपत्तेश्च। *(ब्रह्मसूत्र २-२-१)*

गीता भी- **दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।** *(गीता ७-१४)*

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। *(गीता ९-१०)*

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। *(गीता ७-४)*

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्॥ *(गीता ७-५)*

भागवत भी -**एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी।** *(भाग. ११-३-१६)*

माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्। *(भाग. ४-७-३७)*

सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते। *(भाग. ३-७-९)*

रामायण - **सो दासी रघुवीर की।**

जासु सत्यता ते जड़माया।

शंकराचार्य के अनुयायी प्रख्यात अद्वैती विद्यारण्य ने कहा -

तस्मादुभयं मिलित्वैव जगत्कारणं भवति।

अर्थात् केवल ब्रह्म सृष्टि नहीं कर सकता एवं केवल जड़ माया सृष्टि नहीं कर सकती। अतः दोनों मान्य हैं। माया तत्त्व का भागवत में अद्वितीय निरूपण किया गया है। यथा -

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥

(भाग. २-९-३३)

अर्थात् - मेरे बिना ही माया की प्रतीति होती है। प्रतीति का तात्पर्य है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्मुखता। जो जीव मेरी शरण में नहीं आये, उन्हीं पर माया का अधिकार होता है। दूसरी परिभाषा यह है कि मेरे बिना जिसकी प्रतीति नहीं होती। अर्थात् मेरी प्रेरणा शक्ति के बिना जड़माया कुछ नहीं कर सकती। अब उदाहरण से समझिये -

यथाभासः - आकाश में स्थित सूर्य का प्रतिबिंब जल आदि में पड़ता है। वह प्रतिबिंब सूर्य के बाहर ही है। और यह प्रतिबिंब भी सूर्य के आश्रय से ही प्रकट होता है। वैसे ही माया भी अपने शक्तिमान् भगवान् से बाहर ही रहती है। किन्तु भगवान् की शक्ति के आश्रय से ही कार्य करती है।

यथा तमः - अंधकार सदा प्रकाश से दूर ही रहता है। किन्तु प्रकाश के बिना अंधकार की प्रतीति भी नहीं हो सकती। चक्षु के प्रकाश से ही तो अंधकार का निर्णय हो सकता है।

इस माया शक्ति की २ वृत्तियाँ होती हैं।

१. जीव माया   २. गुण माया।

१. **जीव माया** - यह जीव के स्वस्वरूप को आवृत्त कर देती है। जिससे जीव स्वयं को देह मान बैठता है। पुनः संसार में रक्त हो जाता है।

२. **गुण माया** - सत्व, रज, तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था प्रकृति।

पुनः जीव माया की भी दो शक्तियाँ होती हैं।

१. आवरणात्मिका जीव माया - इससे जीव निजस्वरूप को भूल जाता है।
२. विक्षेपात्मिका जीव माया-इससे जीव संसार में आसक्त हो जाता है।

यह जीवमाया एवं गुणमाया दोनों ही सृष्टि में गौणकारण हैं अर्थात् जीवमाया, गौण निमित्तकारण एवं गुणमाया गौण उपादान कारण हैं। मुख्य निमित्तोपादान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण तो श्रीकृष्ण ही हैं।

तात्पर्य यह कि बहिर्मुख होने के कारण माया द्वारा स्वस्वरूप भुलाया। फिर स्वयं को देह मान कर संसार में ही आत्मा का दिव्य सुख खोजने लगा। अतः ब्रह्मलोक पर्यंत अनंत बार विविध सुखों के भोग में ही अनवरत लगा रहा। अनंत बार स्वयं भगवान् के अवतार स्वरूप को देखा। तथा अनंत संतों के पास भी गया किंतु मायिक इंद्रिय मन बुद्धि होने के कारण कभी कहीं शरणागत न हो सका। इन सब दुःखों का कारण श्रीकृष्ण की विमुखता ही है। अतः इससे निवृत्ति का उपाय भी सन्मुखता या शरणागति ही है अतः गीता कहती है -

दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७-१४)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

अंतरंग है परा जो, सर्व समर्थ कहाय।
अति विचित्र गति परा की, मायापतिहुँ नचाय॥ ६ ॥

भावार्थ – श्रीकृष्ण की परा शक्ति सब कुछ करने में समर्थ है। उसे अघटित-घटना पटीयसी कहा जाता है। यह महाशक्ति इतनी विचित्र है कि अपने शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण को भी नचाती है।

व्याख्या – पूर्व में बताया गया कि श्रीकृष्ण परब्रह्म की अनन्त शक्तियाँ हैं। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते। *(श्वेता. ६-८)*

अर्थात् जैसे अग्नि में दाहकत्व, प्रकाशकत्व, रूप शक्तियाँ रहती हैं। ऐसे ही श्रीकृष्ण में अनन्त शक्तियाँ रहती हैं। शक्तियाँ चेतन भी हैं। जैसे-ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति आदि। इन समस्त शक्तियों की जननी पराशक्ति है। इसी को पराशक्ति कहते हैं। इन शक्तियों से ब्रह्म श्रीकृष्ण स्वरूप में बड़ा, शक्तियों में बड़ा, शक्तियों के कार्य में बड़ा, (अनन्त) शक्तियों की प्रकाश वैचित्री में भी बड़ा रहता है। श्वेताश्वतरोपनिषत् कहता है। यथा -

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। *(श्वेता. ६-८)*

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो। *(गीता ११-४३)*

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः। *(भाग. ३-२-२१)*

तात्पर्य यह कि वह एवं उसकी शक्तियाँ इतनी बड़ी (अनन्त) हैं कि न तो उनसे बड़ा कोई है, न तो उनके बराबर ही कोई है। कुछ लोग (अद्वैती) ब्रह्म में शक्तियाँ ही नहीं मानते। वे लोग ध्यान दें। श्रुति कहती है -

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः *(मुण्डको. १-१-९)*

अर्थात् ब्रह्म सर्वज्ञ है। पुनः वही श्रुति स्पष्ट करती है। यथा -

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तंस्यैष आत्मा विवृणुते तनूः स्वाम्॥
(कठोप. १-२-२३, मुण्डको ३-२-३)

अर्थात् - वह ब्रह्म जिसका वरण करता है, वही जीव उसे प्राप्त करता है। अतः ब्रह्म सशक्तिक एवं सविशेष है। शंकराचार्य ने प्रथम ब्रह्मसूत्र भाष्य में लिखा है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभावं सर्वज्ञं सर्वशक्ति समन्वितं ब्रह्म।

किंतु पश्चात् शंकराचार्य ने मुख्यार्थ छोड़ कर लक्षणा वृत्ति का आश्रय लेकर ब्रह्म को नि:शक्तिक एवं निर्विशेष माना है। वस्तुत: उनका एक ही लक्ष्य था कि जीव एवं ब्रह्म का एकत्व ही सिद्ध करना है। वेदों में भेदवादिनी एवं अभेदवादिनी दोनों ही प्रकार की ऋचायें हैं। कहीं कहीं तो एक ही मंत्र में दोनों ही प्रकार की ऋचायें हैं। शंकर ने अभेदवादिनी ऋचाओं को ही पारमार्थिक माना एवं भेदवादिनी ऋचाओं को व्यावहारिक कह कर टाल दिया। किंतु इस मंतव्य में प्रमाण नहीं दे सके। वेद तो कहता है। यथा -

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति। *(कठोप. १-२-१५)*

अर्थात् सभी ऋचायें एक सी हैं। वस्तुत: दोनों ही प्रकार की ऋचायें पारमार्थिक ही हैं। किंतु समझने की शक्ति साधारण बुद्धि में नहीं है। बड़ी सीधी सी बात है कि ब्रह्म एवं जीव तथा माया इन तीन तत्त्वों को भेदवादिनी ऋचायें स्पष्ट बता रहीं हैं। एवं एकमात्र बह्म को ही अभेदवादिनी ऋचायें स्पष्ट बता रही हैं। दोनों सही हैं। क्योंकि जीव (परा) एवं माया (अपरा) दोनों ही ब्रह्म की शक्तियाँ हैं। शक्ति एवं शक्तिमान् में भेद एवं अभेद दोनों ही माना गया है। अत: कोई विवाद है ही नहीं। अस्तु अपनी शक्तियों के द्वारा ही वह निर्गुण निर्विशेष निराकार तथा सगुण सविशेष साकार बनता है।

वह ब्रह्म प्रमुख रूप से आनन्द का ही वाचक है। साथ में सत् चित् विशेषण युक्त भी है। अत: उसे सच्चिदानन्द भी कहा जाता है। यथा वेद -

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। *(तैत्तिरीयो. ३-६)*

वह ब्रह्म का आनन्द नित्य एवं अनन्त है। जबकि जगत् का आनन्द अनित्य एवं अल्प है। पुन: वह आनन्द चेतन भी है। संसारी आनन्द जड़ है। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्य चेतन ईश्वरीय आनन्द स्वयं ब्रह्म को भी आनन्द का अनुभव कराता है, तथा अन्य प्रपन्न जीवों को भी आनन्द दान कराता है। वह ब्रह्म सत् है। चित् है। आनन्द है। इन तीनों में तीनों का निवास है। जो सत् है, वही चिदानन्द है। जो चित् है, वही सदानन्द है। एवं जो आनन्द है वही सच्चित् भी है।

शक्ति की क्रिया से निर्विशेष वस्तु सविशेष बन जाती है। जैसे कुम्हार की शक्ति से मृत्तिका का घट, सुराही आदि रूप बन जाता है। सब से अन्तरंग पराशक्ति से ही ब्रह्म, साकार बन जाता है। इसी से श्रुतियों ने ब्रह्म के दो स्वरूप बताये हैं। यथा –

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च।

(बृहदा. २-३-१)

स्वयं शंकराचार्य ने भी कहा है। यथा –

मूर्तं चैवामूर्तं द्वे एव ब्रह्मणो रूपे।
इत्युपनिषत् तयोर्वा द्वौ भक्तौ भगवदुपदिष्टौ।

(शंकराचार्य)

इसी परा या स्वरूप शक्ति की क्रिया से चैतन्य आनन्द का अनुभव जीवों को भी कराया जाता है। अतः वेद कहता है। यथा –

रसो वै सः। *(तैत्तिरीयो. २-७)*

इस रस शब्द के २ अर्थ होते हैं। १– **'रस्यते रसः'** अर्थात् जो स्वयं आनन्दानुभव करे। २– **'रसयति रसः'** अर्थात् जो अन्य शरणागत जीवों को परमानंद का अनुभव करावे। उसी शक्ति के द्वारा ब्रह्म ३ स्वरूप वाला भी बन जाता है। १–ब्रह्म। २–परमात्मा। ३–भगवान्। वेदव्यास कहते हैं। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेतिपरमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

(भाग. १-२-११)

इन तीनों में ब्रह्म तो अव्यक्त शक्तिक है। अर्थात् समस्त शक्तियाँ तो हैं, किन्तु उनका विकास नहीं होता। फिर भी ब्रह्म के अस्तित्व के हेतु तो शक्ति का विकास है ही।

दूसरा स्वरूप परमात्मा का है। यह सगुण साकार स्वरूप है। इसमें रूप, गुण, नामादि भी हैं। किंतु शक्तियों का विकास अल्प मात्रा में ही होता है। तीसरा स्वरूप भगवान् का है। यह सगुण साकार भी है। नाम रूप गुणादि भी है। साथ ही परिकर एवं लीलायें भी हैं। इस स्वरूप में समस्त शक्तियों का पूर्ण विकास होता है। अतः श्रीकृष्ण को ही वेदों ने पूर्ण परब्रह्म कहा है। यथा -

योऽसौ परं ब्रह्म गोपालः।

चैतन्य - **स्वयं भगवान् कृष्ण कृष्ण परतत्व।**
पूर्ण ज्ञान पूर्णानंद परम महत्व।

इसी पराशक्ति से श्रीकृष्ण, ब्रह्म की प्रतिष्ठा हैं। यथा वेद -

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

(मुण्डको. ३-१-३)

गीता - **ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।**

(गीता १४-२७)

इसी शक्ति से ब्रह्म श्रीकृष्ण एक रूप होते हुए भी बहु रूप हैं। यथा वेद -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकोपि सन् यो बहुधा विभाति।

(गोपालतापनीयोप. पू-३१)

अतः ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् एवं भगवान् के अनन्त विचित्र स्वरूप सब एक ही हैं। भेद बुद्धि लाना नामापराध है।

ईश्वरत्वेभेदमानिले हय अपराध।

(चै.च.)

वे चाहे जिस स्वरूप में हों, सभी, सभी शक्तियों से युक्त हैं। सभी भगवान् ही हैं। श्रीकृष्ण इसी स्वरूपशक्ति के प्रभाव से सृष्टिकर्ता होते हुए भी अकर्ता बने रहते हैं। अर्थात् सृष्टि के प्रभाव से अछूते रहते हैं। इसी शक्ति से भक्तों के साथ नानाविध लीलायें करते हैं। इसी शक्ति से वे अपना अनन्त ऐश्वर्य भूल जाते हैं। एवं भक्तों के परवश हो कर नट मर्कट की भाँति नाचते रहते हैं। ब्रजरस के रसिक इन विषयों से सुपरिचित होते हैं। इसी महाशक्ति के प्रभाव से श्रीकृष्ण नर लीला करते हुए भी उसी शरीर से (प्राभव देह) सर्वव्यापक भी बने रहते हैं।

तात्पर्य यह कि स्वरूप शक्ति के द्वारा वे दो विरोधी लीलाओं को सहज रूप से करते रहते हैं। यथा -

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात्।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः।

(भाग. १०-३-१९)

इसी शक्ति से सब से आश्चर्यजनक बात यह होती है, कि जो श्रीकृष्ण ब्रह्मा शंकरादि के मनमोहन रहते थे। वे स्वयं स्वमनमोहन बन जाते हैं। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वच्छायामभिवीक्ष्य मुह्यति हरौ राधास्मितं पातु नः।
अपरिकलित पूर्वः कश्चमत्कारकारी स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥
(ललित माधव ८-३२)

आपन माधुर्य हरे आपनार मन
आपने आपना चाहे करिते आलिंगन। *(चै.च.)*

अर्थात् अपनी परछांई देख कर स्वयं मोहित हो जाते हैं। एवं राधा बन कर अपने सौंदर्य माधुर्य का पान करने के हेतु परम व्याकुल बन जाते हैं। यह सब राधा (परा) कृपा का फल है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

माया है जड़ शक्ति पै, ज्ञानिहुँ पार न पाय।
याको कारन स्वयं हरि, याको प्रेरक आय॥ ७॥

भावार्थ- वस्तुतः माया जड़ शक्ति है। किंतु इस माया को महानतम आत्मज्ञानी भी नहीं जीत सकता। इसका प्रमुख कारण यही है कि यह माया स्वयं श्रीकृष्ण की है। एवं उनकी ही प्रेरणा शक्ति से कार्य करती है।

व्याख्या - वेद कहता है यथा -

'मायिनं तु महेश्वरम्' *(श्वेता. ४-१०)*

अर्थात् सर्वशक्तिमान् भगवान् की शक्ति का नाम माया है। गीता भी कहती है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७-१४)

यह माया ईश्वरीय है। अत: श्रीकृष्ण के अतिरिक्त इस से उत्तीर्ण होने की शक्ति किसी में भी कभी नहीं हो सकती। अत: श्रीकृष्ण कृपा ही एक मात्र उपाय है। यदि कोई कहे कि अनन्तानन्त ज्ञानी, माया से उत्तीर्ण हो चुके। एवं सत्य तो यही है कि -

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'

'ज्ञानादेव हि कैवल्यं'

इसका उत्तर यह है कि आत्मज्ञान नहीं है, वरन्, यह कृपा साध्य ब्रह्मज्ञान है। यथा -

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०-१०)

विष्णु पुराण कहता है। यथा -

वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति।

(विष्णु. पु. १-४-१८)

अर्थात् बिना श्रीकृष्ण भक्ति के मोक्ष असंभव है। इसी से वेद भी कहता है। यथा -

तः ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।

(श्वेता. ६-१८)

गीता पुन: कहती है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५-१९)

स्कन्द पुराण भी –

परमं तद्धि निर्वाणं मदनुग्रहतो भवेत्।

अद्भुत रामायण –

शक्यो न पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्।

गीता के

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(गीता १८-६६)

इस महावाक्य की व्याख्या में महान् अद्वैती (शंकरानुयायी) मधुसूदन सरस्वती ने शंकर मत के विरुद्ध वेदमंत्र दिया है। यथा –

इन्द्रं त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।

सारांश यह है कि एक आत्मज्ञान, साधना से प्राप्त होता है एवं दूसरा ब्रह्मज्ञान, भगवत्कृपा से प्राप्त होता है। इसी ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष संभव है। यह बात स्वयं शंकर ने भी मानी है। यथा –

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं विमुक्तोऽहं भवग्रहात्।
नित्यानन्दस्वरूपोऽहं पूर्णोऽहं त्वदनुग्रहात्॥

(शंकराचार्य)

तदनुग्रह हेतुकेनैव च विज्ञानेन मोक्ष सिद्धिर्भवितुमर्हति।

(शां. भाष्य.)

रामायण भी –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी, कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी॥

आत्मज्ञान प्राप्त करने के हेतु ८ अन्तरंग साधन सहस्त्रों जन्म करने पड़ते हैं। यथा १ विवेक, २ वैराग्य, ३ शमादिषट् संपत्ति, ४ मुमुक्षत्व, ५ महावाक्य श्रवण, ६ मनन, ७ निदिध्यासन, ८ समाधि। यदि वह ज्ञानी ज्ञान प्राप्त भी कर लेता है तो वह आत्मज्ञान ही है। इससे माया नहीं जाती। गुणात्मिका माया बनी रहती है। समाधि को यों समझिये जैसे किसी को मधुमक्खी काट रही हों, और वह जल में डूब जाय, तो बच जायगा। किंतु जल से बाहर (समाधि से बाहर) आते ही पुनः मधुमक्खी रूपी माया दबोच लेती है। जड़भरत आदि उदाहरण हैं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

कर्म, योग अरु ज्ञान सब, साधन यदपि बखान।
पै बिनु भक्ति सबै जनु, मृतक देह बिनु प्रान॥ ८॥

भावार्थ - यद्यपि शास्त्रों में कर्म, योग, ज्ञान तीनों का निरूपण है किन्तु भक्ति के बिना ये सब समस्त साधन प्राणहीन मृतक के समान हैं।

व्याख्या - कर्म यदि श्रुति स्मृति के विधान के अनुसार हो, तभी वह कर्म कहलाता है। किंतु उसका फल स्वर्ग है। वेदादि समस्त धर्मग्रंथों में मायिक स्वर्ग की निन्दा की गयी है-

यथा -

अविद्यायामंतरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

(मुण्डको. १-२-८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥

(मुण्डको. १-२-१०)

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति॥

(मुण्डको. १-२-७)

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

(गीता ९-२१)

दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः॥

(भाग. ११-१४-११)

स्वर्गहु स्वल्प अंत दुखदायी *(रामायण)*

अतः जब कर्म का फल ही मायिक है, तो उसकी चर्चा क्या? फिर जो जो विधान कर्म में अपेक्षित हैं, वे इस कलियुग में अप्राप्य से हैं। यथा -

देशे काले उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलंधर्म लक्षणम्॥

इन छः साधनों से कर्म होता है। वे सब असंभव हैं। वेद में एक कथा है। एक यज्ञ में एक मंत्र रखा गया। जिसका अर्थ था कि इन्द्र का शत्रु विजय प्राप्त करे। मंत्र था - **'इंद्रशत्रुर्विवर्धस्व'**।

किंतु ऋषियों ने शब्द तो वे ही रखे, केवल स्वर बदल दिये। आद्युदात्त के स्थान पर अंत्योदात्त लगा दिया। अतः मंत्र का अर्थ ही उल्टा हो गया। इन्द्र की विजय हुई। मृत्यु के समय यज्ञकर्ता ने भगवान् से कहा कि यह अन्याय है। दंड तो ऋषियों को मिलना चाहिये। भगवान् ने कहा कि कर्म में कर्ता की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही जिम्मेदारी है। वे सब तुम्हारे लाये हुए थे।

तात्पर्य यह कि जब एक स्वर के बदलने से यज्ञकर्ता ही मारा जा सकता है, तो जहाँ त्रुटि ही त्रुटि होगी, वहाँ का क्या परिणाम होगा। परिणाम नरक ही प्राप्त होगा।

योग एवं ज्ञान में तो और भी अधिक कड़े नियम हैं।

यथा योग में -

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

(गीता ६-११)

ज्ञान में यथा -

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्॥

(भाग. ११-२०-७)

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते। *(गीता १२-५)*

जब ज्ञानादि मार्ग का अधिकारी (साधन चतुष्टय संपन्न) बनना ही करोड़ों में किसी के वश की बात है। तब आगे जो विघ्न आयेंगे, उनका तो कहना ही क्या है। यदि सैकड़ों विघ्न बाधाओं को पार करके ज्ञानी अंतिम भूमिका में भी पहुँच जाय, तो भी पुनः पतन हो जाता है। वेदव्यास -

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततःपतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥

(भाग. १०-२-३२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माया-निवृत्ति का तो प्रश्न ही नहीं है। क्योंकि इतने पर भी उसे ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। अतएव कर्म, योग, ज्ञान किसी से भी मोक्ष तक प्राप्त नहीं होगा फिर प्रेमानन्द का तो कहना ही क्या है। यदि कहो कि फिर शास्त्रों में इन मार्गों का निरूपण ही क्यों किया गया है ? उसका कारण यह है कि हमारा वैदिक धर्म कल्पवृक्ष के समान है। यदि कोई स्वर्ग ही चाहता है, या स्वर्गीय सिद्धियाँ ही चाहता है, अथवा आत्मज्ञान ही चाहता है तो उन सबके लिये सब मार्ग हैं। किंतु वेद यह नहीं कहता कि सबको कर्म या योग या ज्ञान में जाना है। वेद कहता है। यथा - '**स्वर्गकामो यजेत**' अर्थात् जो स्वर्ग चाहे, वह यज्ञ करे। किंतु जो मोक्ष या प्रेमानन्द चाहता है, उसे तो केवल श्रीकृष्ण भक्ति ही करनी होगी।

कुछ लोगों की धारणा है कि कर्मादि से अंतःकरण की शुद्धि होगी। एवं वैराग्य होगा, जो भक्ति में उपकारक है। किन्तु यह कहना भ्रमास्पद है। वस्तुतस्तु केवल भक्ति से ही अंतःकरण-शुद्धि होती है। यथा -

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥

(भाग. ११-१४-२३)

ज्ञान वैराग्यादि भी भक्ति से स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। यथा -

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥

(भाग. १-२-७)

भक्ति प्रधान हो एवं कर्म, योग, ज्ञान अनुगत हों तो निंदनीय नहीं है। किन्तु विशुद्धाभक्ति में इनकी स्थिति भी निंदनीय है। यथा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

प्रथम साधना भक्ति करु, तब मन निर्मल होय।
मिलइ विशुद्धा भक्ति तब, गुरु अनुकंपा तोय॥ ९॥

भावार्थ - सर्वप्रथम साधक को नवधा भक्ति रूपी साधना करनी है। उससे अंत:करण शुद्ध होगा। पश्चात् गुरु की कृपा से विशुद्ध भक्ति प्राप्त होगी।

व्याख्या - प्रमुख रूप से भक्ति २ प्रकार की होती है।

१- साधना भक्ति। २- सिद्धा भक्ति या प्रेमा भक्ति।

यथा -

भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्।

(भाग. ११-३-३१)

अर्थात् प्रथम साधना-भक्ति करनी होगी। किंतु साधना-भक्ति करने के पूर्व एक श्रोत्रिय (जो वेदादि मर्मज्ञ हो) ब्रह्मनिष्ठ (जो दिव्य प्रेम प्राप्त कर चुका हो) गुरु की परमावश्यकता है। क्योंकि प्रथम तो तत्त्वज्ञान प्राप्त करना होगा। इसी से भागवत कहती है --

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(भाग. ११-३-२१)

गीता भी -

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। *(गीता ४-३४)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेद भी –

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्। समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

(मुण्डको. १-२-१२)

गुरु बनाने का अभिप्राय कान फुंकाने आदि आडंबर से नहीं है। गुरु रूप से वरण करना है मन से ही। जब अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा (साधना-भक्ति द्वारा) तभी गुरु दीक्षा देगा। दीक्षा का अभिप्राय है दिव्य प्रेम। पश्चात् तो जीव कृतार्थ हो जायगा।

इस प्रकार मन से गुरु मान कर उसके निर्देश के अनुसार नवधाभक्ति (साधना-भक्ति) करनी होगी। फिर अन्य गुरुओं से दूर ही रहना होगा। अन्यथा दूसरा गुरु अपनी साधना शैली बतायेगा, तो साधक असमंजस में पड़ जायगा। यदि प्रथम गुरु को छोड़कर दूसरे गुरु के निर्देशन में साधना करनी हो, तो कर सकते हो। किंतु सिद्ध गुरुओं की भी शैली भिन्न-भिन्न है। अतः जब तक एक गुरु को ही अपना शरण्य माना है, तब तक अन्य की बात न सुनो। नवधा भक्ति का सर्वत्र विशेष प्रचार है। भागवत में यथा –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(भाग. ७-५-२३)

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।

(भाग. ७-५-२४)

इन श्रवणादि भक्तियों में से चाहे जो भक्ति की जाये, किंतु मन के द्वारा स्मरण भक्ति परमावश्यक है। यद्यपि स्मरण के पश्चात् ८ भक्तियों में कीर्तन का सर्वाधिक महत्व है। यथा वेदव्यास –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कलौ संकीर्त्य केशवम्,

'कलौ तद्धरि कीर्तनात्,

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(वृहन्नारदीय पुराण, स्कन्द पुराण)

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥

(भाग. ११-५-३६)

प्रमुख ध्यान देने की बात यह है कि भक्ति या साधना मन को करनी है। यथा-

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये॥

(भाग. ३-२५-१५)

प्रत्येक कर्म का कर्ता मन ही माना गया है। इसी से नवधाभक्ति में एक शर्त लगा दी है कि -

'इति पुंसार्पिता विष्णौ' *(भाग. ७-५-२४)*

अर्थात् प्रथम मन की शरणागति करनी है। यही स्मरण भक्ति है। यदि किसी भी भक्ति में मन न लगाया जायगा (श्रीकृष्ण का रूपध्यान) तो वह भक्ति विशेष लाभ न दे सकेगी। साथ में इन्द्रियों को भी लगाये रहो। किंतु मन का प्रमुख ध्यान रहे। साधना भक्ति प्रारम्भ करने के पूर्व जीव (दास) एवं शरण्य (श्यामसुन्दर) के विषय का भी ज्ञान परमावश्यक है। श्रीकृष्ण एवं उनके अनन्त नाम, रूप, गुण, लीला, धाम एवं भक्त सब एक ही हैं। इनमें कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी को छोटा बड़ा मानकर दुर्भावना न करें। यद्यपि गुरु का स्थान ऊँचा कहा जाता है, किंतु वह इसलिये कहा जाता है कि हमारा आदि से लेकर अंत तक उसी से स्वार्थ सिद्ध होता है। किंतु गुरु में कोई ज्ञानानन्दादि अपनी कमाई का नहीं है। वह तो श्रीकृष्ण का ही दिया हुआ है।

तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण के समस्त स्वांश (अवतार) एवं उनके नाम, गुणादि सब में सब का निवास है। अतः भागवत कहती है -

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

(भाग. ११-१७-२७)

अर्थात् गुरु कोई पृथक् तत्त्व नहीं है, वह मैं ही हूँ। इन सब में कहीं भी दुर्भावना होने पर अक्षम्य नामापराध हो जायगा। वैसे तो निन्दनीय पापात्मा पर भी दुर्भावना नहीं करनी है क्योंकि उसमें भी मेरे श्रीकृष्ण बैठे हैं। फिर जिस मन को शुद्ध हरि एवं गुरु चिंतन से शुद्ध करना है उसी मन से पापात्मा के पाप का चिंतन तो मन को और अशुद्ध कर देगा। हाँ-यह अवश्य है कि ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिये। सब को देखते हुए भी सबको नहीं देखना है। वरन् सब में बैठे अपने इष्ट को देखना है।

एक बात प्रमुख रूप से गाँठ बांध लेने की है। वह यह कि भक्ति केवल श्यामा श्याम की सेवा के लिये ही सदा रहे। उनके सुख में सुखी रहने के लक्ष्य से ही युक्त रहे। अपने सुख की कामना की गंध भी न आने पाये। यह निरन्तर अभ्यास करना है। यथा - नारद जी

'तत्सुख सुखित्वम्'। *(ना. भ. सू. २४)*

अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति। *(भाग. १-२-६)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्।

(ना. भ. सू. - ५४)

मैंने रूपध्यान पर विशेष ध्यान दिलाया है। क्योंकि हम जिसकी भक्ति करने जा रहे हैं, जब उसी को मन में नहीं लायेंगे तो वह उसकी भक्ति ही न रहेगी। फिर वह इन्द्रियों की भक्ति मानी जायगी एवं उस समय जहाँ मन रहेगा, उसी का फल मिलेगा।

रूपध्यान की बात आते ही प्राय: यह प्रश्न आता है, कि श्रीकृष्ण को तो देखा ही नहीं, फिर हम ध्यान कैसे करें? प्रथम तो यह समझ लीजिये कि यदि उनको दिखा भी दिया जाय तो प्राकृत इंद्रियों से श्रीकृष्ण भी प्राकृत ही दिखाई पड़ेंगे। दूसरी बात यह है कि देखी हुई वस्तु का ध्यान कठिन है। जैसे तुमने किसी व्यक्ति को १० बार देखा है फिर भी ठीक वैसा ही रूप आप नहीं बना सकते। ठीक वैसी ही आँख, कान की आकृति बनाने में हार माननी पड़ेगी किंतु श्रीकृष्ण की बिना देखी आकृति बनाना अत्यन्त सरल है। इसका कारण यह है कि श्रीकृष्ण का कोई एक रूप निर्धारित ही नहीं है। आपको जैसा रूप संसार में प्रिय लगे, वैसा ही बना लीजिये। श्रीकृष्ण इतने कृपालु हैं कि वे आपके बनाये हुये रूप को ही रूपध्यान मानकर फल दे देते हैं। अन्यथा तो किसी मायाबद्ध जीव को कभी भगवत्प्राप्ति ही न हो। क्योंकि पहले दिव्य दृष्टि तो मिलेगी नहीं। फिर वह रूपध्यान कैसे करेगा।

आपको यह भी छूट दे दी गई है कि चाहे जिस आयु का रूपध्यान बना लीजिये। बार-बार आयु का परिवर्तन भी करते रहिये। उनके नाम, गुण, लीला, धामादि भी अपनी रुचि के अनुसार स्मरण कीजिये। जो शृंगार पसन्द हो, वही शृंगार भी कीजिये। आप स्वतंत्र हैं, यह सब करने में। यह न सोचिये कि हमारे मन का बनाया हुआ रूप तो साधारण ही है, अत: हमको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधारण दर्शन मिलेगा। दर्शन तो वास्तविक होगा। श्रीकृष्ण यदि शूकर बन कर भी आयेंगे, तब भी वही परमानन्द मिलेगा। जैसे चीनी के बने खिलौने सब एक से ही मीठे होते हैं।

मन तो प्राकृत है। अतः रूपध्यान भी प्राकृत ही बनेगा, किंतु उसमें दिव्य भावना बनाते रहिये। जब साधना भक्ति करते-करते अंतःकरण शुद्ध हो जायगा, तब स्वरूपशक्ति की कृपा से शरीरेन्द्रिय मन बुद्धि दिव्य हो जायेंगे। तभी दिव्य शक्ति प्राप्त मन, दिव्य ध्यान कर सकेगा। यदि कोई चाहे तो प्रथम मूर्ति या मनभाये चित्र की सहायता ले ले। मेरी राय में तो मन से ही मनभाया रूप बनाने का अभ्यास करना चाहिये। मन से बनाने में एवं उनकी सेवा करने में किसी बाह्य पदार्थ की आवश्यकता ही न पड़ेगी। चाहे आप क्षण-क्षण में अत्यन्त दैदीप्यमान हीरों का हार पहनाया करें। एक बात और समझ लीजिये कि यह रूपध्यान सर्वत्र एवं सर्वदा करते रहना है। चाहे आप गंदी से गंदी जगह पर ही क्यों न हों।

भक्ति में अनन्यता पर भी प्रमुख ध्यान देना है। केवल श्रीकृष्ण एवं उनके नाम, रूप, गुण, लीला, धाम तथा गुरु में ही मन का लगाव रहे। अन्य देव, दानव, मानव या मायिक पदार्थों में मन का लगाव न हो। इसका तात्पर्य यह न समझ लो कि संसार से भागना है। वास्तव में संसार का सेवन करते समय उसमें सुख नहीं मानना है। श्रीकृष्ण का प्रसाद मानकर खाना पीना एवं व्यवहार करना है। उपर्युक्त समस्त ज्ञान साथ रखकर सावधान होकर साधना भक्ति करने पर शीघ्र ही मन अपने स्वामी से मिलने को अत्यन्त व्याकुल हो उठेगा। बस वही व्याकुलता ही भक्ति का वास्तविक स्वरूप है। यथा गौरांग महाप्रभु ने कहा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे॥

(शिक्षाष्टक-गौरांग महाप्रभु)

अर्थात् उनसे मिले बिना रहा न जाय। एक क्षण भी युग लगे, सारा संसार शून्य सा लगे।

एक बात और ध्यान में रखना है कि साधनाभक्ति करते-करते जब अश्रुपात आदि भाव प्रकट होने लगे तो लोकरंजन का रोग न लगने पाये। अन्यथा लोगों से सम्मान पाने के लालच में भक्तिभाव से ही हाथ धोना पड़ जायगा। आपको तो अपमान का शौक बढ़ाना होगा। गौरांगमहाप्रभु ने कहा है-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(शिक्षाष्टक-गौरांग महाप्रभु)

अर्थात् साधक अपने आपको तृण से भी निम्न समझे। वृक्ष से भी अधिक सहनशील बने। सबको मान दे किंतु स्वयं मान को विष माने। सच तो यह है कि जब तक साक्षात्कार या दिव्य प्रेम न मिल जाय, तब तक सभी नास्तिक या आस्तिक समान ही हैं क्योंकि अभी तो माया के ही दास हैं। फिर अहंकार क्यों ?

उपर्युक्त तत्त्वज्ञान सदा काम में लाना चाहिये। प्रायः साधक कुछ निर्धारित साधना काल में ही तत्त्वज्ञान साथ रखते हैं। यह समीचीन नहीं है। क्षण-क्षण अपने मन की जाँच करते रहना है। नामापराध से प्रमुख रूप से बचना है। यदि मन को सदा अपने शरण्य में ही लगाने का अभ्यास किया जाय, तभी गड़बड़ी से बचा जा सकता है। अन्यथा मन पुराने स्थान पर पहुँच जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधना-भक्ति के पश्चात् भाव-भक्ति का स्वयं उदय होता है। इन दोनों की यह पहिचान है कि साधना-भक्ति में मन को संसार से हटाकर भगवान् में लगाने का अभ्यास करना होता है जबकि भावभक्ति में स्वयं मन भगवान् में लगने लगता है। संसार के दर्शनादि से वितृष्णा हो जाती है। अर्थात् पहले मन लगाना पश्चात् मन लगना। जैसे संसार में कोई भी व्यक्ति जन्मजात शराबी नहीं होता। पहले बेमनी से बार-बार पीता है। फिर धीरे-धीरे शराब उसे दास बना लेती है। वह शराबी समस्त लोक एवं परलोक पर लात मार देता है। जब जड़ शराब के नशे का यह प्रत्यक्ष हाल है तो हम भी जब भक्ति करते-करते दिव्य मस्ती का अनुभव करने लगेंगे तब हम भी भुक्ति मुक्ति बैकुण्ठ को लात मार देंगे। एवं युगल सुख के हेतु युगल सेवा की ही कामना करेंगे।

रूपध्यान करते समय मन अपने पूर्व प्रिय पात्रों के पास जायगा। उस समय आप अशांत न हों। मन जहाँ भी जाय जाने दीजिये। बस उसी जगह उसी वस्तु में अपने शरण्य को खड़ा कर दीजिये। जैसे स्त्री की आँख के सौंदर्य में मन गया तो उसी आँख में श्यामसुन्दर को खड़ा कर दो। बस कुछ दिन में मन थक जायगा। सर्वत्र सर्वदा अपने श्याम के ही ध्यान का अभ्यास करना है। गीता कहती है -

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

(गीता ६-३५)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब साधन जनु देह सम, रूपध्यान जनु प्रान।
खात गीध अरु स्वान जनु, कामादिक शव मान॥ १०॥

भावार्थ – श्रीकृष्ण की प्राप्ति की समस्त साधनायें (यम, नियम, कर्म, योग, ज्ञान व्रतादि) प्राणहीन शव के समान हैं। यदि रूपध्यान रहित हैं।

व्याख्या – उप-उपसर्ग आस् धातु से ल्युच् प्रत्यय होकर उपासना शब्द बनता है। जिसका अर्थ ही है 'मन का श्रीकृष्ण के पास रहना।' इसी प्रकार भक्ति शब्द भी 'भज् सेवायाम् धातु से बनता है।' जिसका अर्थ है मन से अपने सेव्य की सेवा करना। गरुड़ पुराण कहता है–

भज इत्येषवैधातुः सेवायां परिकीर्तितः।
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिः साधनभूयसी॥

(गरुड़ पुराण)

चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति के २ प्रकार बताये हैं। यथा –

१. **अनासंग भक्ति। २. सासंग भक्ति**

१. **अनासंगभक्ति** – जो भक्ति मन के रूपध्यान से रहित होती है। केवल इन्द्रियों से ही की जाती है।

२. **सासंगभक्ति** – जो भक्ति शरण्य के रूपध्यान से युक्त होती है। यही भक्ति वास्तविक भक्ति है। रसिकों ने कहा कि –

'मनेर स्मरण प्राण,

श्रीकृष्ण का स्मरण साधना भक्ति में प्राण के समान है। प्राणहीन को तो कोई गीध कुत्ते खा जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जब भगवान् के नामादि में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् की सब शक्तियाँ रहती ही हैं, तो लाभ तो पूरा ही मिलेगा। क्योंकि

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥

(भाग. ६-२-४९)

अर्थात् अजामिल ने मृत्यु के समय अपने बेटे का ध्यान करते हुये बेटे का ही नाम 'नारायण' लिया। और वह गोलोक गया। अतः रूपध्यान परमावश्यक नहीं है।

ऐसा कहने वालों ने भागवत का ठीक ठीक अध्ययन मनन नहीं किया। प्रथम तो यह विचार कीजिये कि अजामिल ने जब अपने पुत्र के नाम के लक्ष्य से नारायण कहा था, तब उसका मृत्यु का समय ही नहीं था। यदि मृत्यु का समय होता तो विष्णुदूत हरिधाम ले जाते। अजामिल तो उन दूतों के चले जाने के बाद हरिद्वार गया था वहाँ उसने अनन्य निष्ठा से श्रीकृष्ण भक्ति की थी। जब भक्ति परिपूर्ण हो गई, तब मृत्यु समय आने पर बैकुंठ गया।

थोड़ा तर्क से भी समझ लीजिये। मृत्युकाल के कष्ट के समान कोई कष्ट नहीं होता। उस असह्य कष्ट को मायिक मन बुद्धि सहन ही नहीं कर सकते। यों समझिये - मान लीजिये देवदत्त ने यज्ञदत्त को लाठियों से मारना प्रारम्भ किया। प्रत्येक लाठी के प्रहार से वह चिल्लाता रहा किंतु दसवीं लाठी के प्रहार पर चुप हो गया। देवदत्त ने समझा कि यज्ञदत्त मर गया। अतः वह चला गया। किंतु १ घंटे में ही यज्ञदत्त होश में आ गया। और पुनः कराहने लगा। इसका अभिप्राय यह है कि मृत्यु से कम कष्ट की दशा मूर्च्छा है। जब मूर्च्छा में ही मन बुद्धि का कार्य नहीं होता तो मृत्यु के कष्ट में कोई कैसे कुछ भी बोल सकेगा। तभी तो बालि ने कहा था यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोटि कोटि मुनि यतन कराहीं, अंत राम कहि आवत नाहीं।

गीता में बड़ा सुंदर निरूपण किया है। यथा –

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता ८-१३)

अर्थात् मेरा (**मां**) स्मरण करते हुये यदि मेरा नाम लेकर कोई शरीर छोड़ता है, तभी मेरे लोक को आता है। पुनः गीता ही कहती है। यथा –

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।

(गीता ८-५)

इन दोनों श्लोकों में दो बातें विचारणीय हैं। एक यह कि '**मामनुस्मरन्,** '**मामेव स्मरन्,** केवल मेरा ही स्मरण करे फिर मेरा नाम ले या न ले। दूसरी यह कि जो शरीर को स्वेच्छा से छोड़ता है। स्वेच्छा से शरीर छोड़ने की बात मायिक जीव कैसे करेगा। जब बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र भी कोटि कोटि उपाय करके भी हरि स्मरण (मृत्यु-काल में) नहीं कर पाते, तो साधारण जीव की बात ही क्या है।

वास्तव में सिद्ध महापुरुषों के पास यमराज स्वयं जाकर उनके चरणों में सिर रखकर प्रार्थना करता है कि आपका समय हो गया है। सूचनार्थ ही आया हूँ। यदि आप और रहना चाहें तो आप स्वतंत्र हैं। ऐसे संत ही शरीर को भी स्वेच्छा से हँसते हुए त्याग देते हैं। बस उनकी ही मन बुद्धि चेतनायुक्त रहती है। वे ही हरिस्मरण करते हुये शरीर त्याग करते हैं। मोटी अकल की बात यह है कि जब मृत्यु के पूर्व कमाई ही नहीं की तो बाद में कैसे मिलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अटल सिद्धान्त है कि आसक्ति या वैराग्य या अनुराग सब कुछ मन से ही सम्बन्ध रखता है। भगवान् सर्वान्तर्यामी है, वहाँ धांधली नहीं चल सकती। तथा भगवान् का सनातन नियम भी नहीं बदला करता।

इन्द्रियों का कर्म तो भगवान् नोट ही नहीं करते। संसार साक्षी है कि अर्जुन ने लाखों खून किये किंतु श्रीकृष्ण ने डांटने का भी दंड नहीं दिया। क्योंकि अर्जुन का मन निरन्तर श्रीकृष्ण के ध्यान में था। यही तो गीतादेश है –

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(गीता ८-७)

इसी प्रकार महाभागवत हनुमान आदि ने भी लाखों ब्राह्मणों की हत्या की। लंका को जला दिया। किंतु उनको पुरस्कार मिला।

यथा –

प्रत्युपकार करौं का तोरा सन्मुख होइ न सकत मन मोरा।

सच तो यह है कि यदि यह विश्वास है कि हरिनाम में सब शक्तियाँ हैं, तो रूपध्यान करेगा ही।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जग महँ सुख दुख दोउ नहिं, अस उर धरि ले ज्ञान।
सुख माने दुख मिलत है, सुख न जगत महँ मान ॥ ११ ॥

भावार्थ – संसार में न सुख है, न दुःख ही है यह ज्ञान दृढ़ कर लेना चाहिये। संसार में सुख मानने से ही उसके अभाव में दुःख मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – संसार, माया से बना है। फिर भी इसमें ३ तत्त्व हैं – १. ब्रह्म। २. जीव। ३. माया। इनमें माया निर्मित जड़ जगत् तो प्रत्यक्ष ही है। जीवगण भी सब जानते ही हैं। केवल ब्रह्म परोक्ष रूप से व्यापक है। यह जगत् जीव का भोग्य है। अतः वेद कहता है। यथा –

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥

(श्वेता. १-१२)

आप कहेंगे कि जब जीव इस संसार का भोक्ता है, तो फिर वैराग्य आदि क्यों बताया जाता है ? तथा इस संसार से सुख क्यों नहीं मिलता। यह संसार, जीवों के शरीर के उपयोग के लिये बनाया गया है। उपभोग के लिये नहीं।

जीवों का शरीर मायिक है। एवं जगत् भी मायिक है। अतः शरीर का विषय सजातीय होने से जगत् है। किंतु आत्मा तो दिव्य है। यथा–

चिन्मात्रं श्री हरेरंशं सूक्ष्ममक्षरमव्ययम्।
कृष्णाधीनमिति प्राहुर्जीवं ज्ञानगुणाश्रयम्।

(वेद)

भागवत कहती है। यथा –

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः।
अविक्रियः स्वदृग् हेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः॥

(भाग. ७-७-१९)

जब आत्मा दिव्य नित्य तत्त्व है, जो उसका विषय भी दिव्य ही होगा। संसार, आत्मा का विषय हो ही नहीं सकता। वस्तुतः प्रत्येक अंश अपने अंशी को ही चाहता है। अतः आत्मा भी जगत् में व्याप्त परमात्मा का ही नित्य दिव्य अनन्त सुख चाहता है। वही आत्मा का विषय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम को संसार में जो सुख का मिथ्या भान होता है, वह हमारी ही मनः कल्पना का परिणाम है। यदि हम संसार में सुख न माने तो दुःख स्वयं समाप्त हो जाय।

संसार में सबको एक ही वस्तु में सुख नहीं मिलता जो व्यक्ति जिस व्यक्ति या वस्तु में बार-बार सुख की भावना बनाता है, उसी में आसक्ति हो जाती है। फिर उसी की ही कामना उत्पन्न होती है। फिर उसी कामनापूर्ति में क्षणिक सुख मिल जाता है। यही कारण है कि एक भिखारिन माँ को अपने काणे कुरूप पुत्र से ही सुख मिलता है। शराबी को ही शराब से सुख मिलता है। पंडितजी को शराब देखकर भी दुःख मिलता है। यदि शराब में सुख होता तो पंडित जी को भी शराबी की भांति ही सुख मिलता।

संसार का कल्पित सुख भी एक सा नहीं होता। प्यासे को ही पानी में, कामी को ही कामिनी में सुख मिलता है। वह सुख भी प्रतिक्षण घटमान होता है। माँ कई दिन के खोये अपने शिशु को प्रथम आलिंगन में अधिक सुखी, पुनः दूसरी तीसरी बार क्रमशः कम सुखी एवं अन्त में विरक्त सी हो जाती है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जग विराग हो तितनोइ, जितनोइ हरि अनुराग।
तब हो हरि अनुराग जब, गुरु चरनन मन लाग॥ १२॥

भावार्थ – वास्तविक गुरु की शरणागति से ही श्रीकृष्ण में अनुराग उत्पन्न होता है। जितनी मात्रा में यह अनुराग होता है उतनी ही मात्रा में संसार से वैराग्य भी होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – कुछ लोग कहते हैं कि प्रथम संसार से ही वैराग्य करो। कुछ लोग कहते हैं कि प्रथम श्रीकृष्ण से ही अनुराग करो। यह विरोधाभास है। मेरी राय में इन दोनों से पूर्व गुरु का कार्य है। प्रथम गुरु द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्त करना होगा। उस तत्त्वज्ञान द्वारा गुरु, श्रीकृष्ण, वैराग्य, अनुरागादि का विज्ञान हृदयंगम करना होगा। हम जितना समझते हैं, उसे सही मान लेना सही नहीं है। हमने 'क' का ज्ञान भी स्वयं नहीं प्राप्त किया। फिर परोक्ष तत्त्व-जीव, ब्रह्म, माया आदि का ज्ञान कैसे प्राप्त कर लेंगे। जब तत्त्वज्ञान हो जायगा, तब हम जानेंगे कि एक जीव है एवं उसका एक मन है। वह मन ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण है। उस मन को मायिक जगत् से हटाकर दिव्य श्रीकृष्ण में लगाना है। क्योंकि श्रीकृष्ण ही हमारे माता, पिता, भ्राता, भर्ता, अंशी आदि सब कुछ हैं।

उन श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के हेतु साधनों का भी ज्ञान प्राप्त करना होगा। और वह ज्ञान यही होगा कि केवल भक्ति के द्वारा ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति होगी। अन्य कोई उपाय नहीं है। अपने गुरु द्वारा भक्ति का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना होगा। गुरु से यही ज्ञान मिलेगा कि श्रीकृष्ण भक्ति में कोई भी नियम नहीं है। सभी जीव अधिकारी हैं। यद्यपि श्रद्धा की शर्त बताई गई है। यथा –

आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥

(भ. र. सि.)

किन्तु भागवत में इसकी भी आवश्यकता नहीं बताई गई। यथा –

सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

(भाग. ३-२५-२५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् गुरु की शरणागति में रहकर उन्हीं की सेवा करते हुये निरंतर सत्संग किया जाय, तो श्रद्धा भी स्वयं उत्पन्न हो जायगी। फिर श्रीकृष्ण में अनुराग भी स्वयं होने लगेगा। फिर उसी अनुराग की मात्रा से ही स्वयं वैराग्य भी होगा।

सारांश यह कि प्रथम गुरु की शरणागति। फिर श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति रूपी साधना। फिर संसार से वैराग्य। यही क्रम बढ़ते-बढ़ते जब भक्ति परिपूर्ण हो जायगी तो संसार से पूर्ण सहज वैराग्य स्वयं हो जायगा। इतना ही नहीं अन्य ज्ञानादि सब कुछ अनचाहे ही मिल जायगा। यहाँ तक कि सभी प्राप्तव्य पुरुषार्थों का स्वामी श्रीकृष्ण भी उस भक्त के आधीन हो जायगा। फिर जीव कृतकृत्य हो जायगा।

अतः उपर्युक्त क्रम से ही लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु प्रयत्न करना चाहिये। शेष सब गुरु दे देगा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जग सों विमुख होय जब, साँचो सद्गुरु पाय।
करत सतत सतसंग तब, हरि सनमुख ह्वै जाय॥ १३॥

भावार्थ - वास्तविक गुरु के निरन्तर सत्संग से ही जीव संसार से विमुख होकर श्रीकृष्ण भक्ति करेगा।

व्याख्या - विश्व में समस्त जीव एकमात्र आनन्द ही चाहते हैं। क्योंकि जीवमात्र, श्रीकृष्ण रूप आनन्दसिन्धु के अंश हैं। किंतु कुछ जीव तो अज्ञान के कारण संसार में ही आनन्द की प्राप्ति के हेतु सतत प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीव जो संसार से विमुख हो गये हैं, वे भी अज्ञानी गुरु के संग के कारण ठीक-ठीक प्रयत्न नहीं करते। अतः इन दोनों को ही लक्ष्य प्राप्ति नहीं हो रही है। अतः यदि वास्तविक गुरु मिल जाय एवं उसके प्रति हमारा विश्वास भी दृढ़ हो जाय तभी उसकी बताई हुई साधना से लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

वस्तुतः हमारी बुद्धि संशययुक्त है। अतः अनन्त बार भगवान् के अवतार एवं सिद्ध संतों के मिलने पर भी हमने उन पर विश्वास नहीं किया। और जहाँ विश्वास किया, वे सब मायिक अज्ञानी थे। अतः हम ८४ लाख योनियों में भटकते रहे। हरि हरिजन के प्रति नामापराध और कमाते रहे। पारस भी सही हो एवं लोहा भी सही हो, तभी स्पर्श से सोना बनेगा। वैसे ही गुरु भी सही हो एवं उनके प्रति विश्वास भी सही हो तभी लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

अस्तु - यदि कभी किसी जन्म में ऐसा संयोग बन जाय। **'सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा।,** और हम उस गुरु के शरणागत होकर उसकी बताई हुई साधना करें तो संसार से विमुख होना अथवा श्रीकृष्ण के सन्मुख होना रूपी समस्या हल हो जाय।

प्रायः हमारी विरक्ति विपरीत होती है। अर्थात् संसार के नष्ट होने पर हम संसार से विमुख होते रहते हैं, अतः पुनः जब संसार मिल जाता है, तब हम उस में अनुरक्त हो जाते हैं। यह तो उलटा वैराग्य हुआ।

यह सदा ध्यान रखना है कि संसार से विमुखता अथवा श्रीकृष्ण की सन्मुखता केवल मन को ही करनी है। संसार से भाग कर संन्यासी बनने का अभिप्राय नहीं है। संसार में रह कर, संसार से विमुख होना विमुखता है। अतः सर्वश्रेष्ठ गुरु का लक्षण भागवत में बताया है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः॥

(भाग. ११-२-४८)

अर्थात् सर्वोत्तम भक्त वही है जो संसार में रहकर, संसार के विषयों का सेवन करते हुये भी मन को श्रीकृष्ण में रखे। न तो कहीं द्वेष करे, न राग करे। संसार को अपने प्रभु का खेल माने। तथा संसार में सर्वत्र अपने शरण्य को ही देखे। यही कर्मयोग है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरि अनुराग विराग जग, आपुहिं आपु न होय।
मन ते भजन किये बिना, भक्ति न पावे कोय॥ १४॥

भावार्थ - संसार से वैराग्य एवं श्रीकृष्ण से अनुराग ये दोनों ही स्वयं नहीं हो जाते। इन दोनों की प्राप्ति के हेतु मन से भजन करना होगा। तभी समस्या हल होगी।

व्याख्या - यह तो बार-बार बताया जा चुका है कि वैराग्य अथवा अनुराग सब का कर्ता केवल मन ही है। किंतु यह आशा भ्रमास्पद है कि कभी भगवत्कृपा या गुरुकृपा या प्रारब्धादि से अपने आप वैराग्य या अनुराग हो जायगा। यदि भगवान् अथवा गुरु ही कर सकते तो यह विश्व ही क्यों रहता। तथा वेदादि का उपेदश भी क्यों होता। यद्यपि शास्त्रों में कृपा द्वारा साध्य मिलेगा, यह भी लिखा है। किंतु उसका अभिप्राय वास्तविक गुरु ही समझा सकता है स्वयं पढ़कर कभी किसी को तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तविकता यह है कि सर्वप्रथम साधक को अंतःकरण शुद्धि की साधना करनी होगी। इसी लक्ष्य से वेदादि उपदेश हैं। जब पात्र तैयार हो जायगा, तब गुरु कृपा से दिव्य प्रेम मिलेगा। दिव्य प्रेम, साधना से नहीं मिल सकता किंतु पात्र (मनःशुद्धि) बनाने की साधना तो करनी ही है। अतः गुरु शरणागति में नवधा भक्ति द्वारा श्रीकृष्ण से ज्यों-ज्यों अनुराग होगा, त्यों-त्यों वैराग्य भी होगा। अतः मुक्ति के विषय में गंभीर विचार करना है।

यह मुक्ति भी ५ प्रकार की बताई गई है। यथा -

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।

(भाग. ३-२९-१३)

अर्थात् १. सार्ष्टि, २. सामीप्य, ३. सालोक्य, ४. सारूप्य, ५. एकत्व अथवा कैवल्य।

१. इनमें से एक मुक्ति अद्वैतियों की है। जिसे सायुज्य कहते हैं। इस मुक्ति में ब्रह्म से एकत्व हो जाता है। अंतःकरण निवृत्त हो जाता है।

२. सालोक्य मुक्ति भक्तों की होती है। इसमें भक्त की कामना समान लोक बैकुण्ठादि की प्राप्ति की होती है। इसमें शरीरेन्द्रिय मन सब हैं।

३. सामीप्य मुक्ति भी भक्तों की है। इसमें भक्त की यह कामना होती है कि मैं सदा अपने शरण्य के पास रहूँ। इसमें भी शरीरादि रहते हैं।

४. सारूप्य मुक्ति भी भक्तों की ही है। इसमें भगवान् के रूप के ही समान रूप की कामना रहती है। इसमें भी शरीरादि होते हैं।

५. सार्ष्टि मुक्ति भी भक्तों की है। इसमें भगवान् के समान ही ऐश्वर्य प्राप्ति की इच्छा रहती है। भक्त के शरीरादि इसमें भी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब इन पाँचों मुक्तियों पर विचार करना है। सायुज्य मुक्ति तो अद्वैती ज्ञानी की है। इसे चुड़ैल इसलिये कहा है कि जिसको लग गई, सदा को लग गई। वह मुक्त कभी भी प्रेमानंद नहीं पाता। यह ज्ञानी सदा को दासत्व से वंचित हो जाता है। किसी किसी ज्ञानी को ही पुनः शरीर देकर कृपा द्वारा प्रेमानंद दिया जाता है यथा –

वेद –

मुक्ता अपि ह्येनं उपासते। *(श्रुति)*

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते।

(शंकराचार्य)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

साँचो दास न कबहुँ चह, पाँचहुँ मुक्ति बलाय।
चहइ युगल सेवा सदा, तिन सुख सुखी सदाय॥ १५॥

भावार्थ – श्रीकृष्ण का वास्तविक दास ५ प्रकार की मुक्ति नहीं चाहता। वह तो केवल श्यामा-श्याम के सुख के लिये ही उनकी सेवा चाहता है। एवं उन्हीं के सुख में सुखी रहता है।

व्याख्या – शास्त्रों में भुक्ति एवं मुक्ति को पिशाचिनी के समान बताया गया है। यथा –

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

(भ. र. सिन्धु)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन दोनों में भुक्ति का अभिप्राय है ब्रह्मलोक तक के सुख। यह सुख इन्द्रिय जन्य मायिक विषयों का है। पूर्व में बताया जा चुका है कि माया का जहाँ तक आधिपत्य है, वह सब सुख अनित्य, सीमित एवं परिणाम में घोर दुःखप्रद हैं। इन सुखों की ३ कक्षायें हैं। सात्त्विक, राजस, तामस। यथा वेद -

पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन। पापमुभाभ्यामेव मनुष्य लोकम्।

(माठर श्रुति)

अर्थात् सात्त्विक कर्म का फल सात्त्विक, राजस का राजस एवं तामस का फल तामस मिलता है। तीनों ही मायिक हैं अनादिकाल से भुक्ति सुख ने जीव को मूर्ख बना रखा है अतः इसे चुड़ैल कहा है। यह पीछा ही नहीं छोड़ती।

किंतु मुक्ति के विषय में बुद्धिमानों को भी आश्चर्य होता है कि उसे चुड़ैल क्यों कहा? मुक्ति तो भुक्ति रूपी चुड़ैल से छुटकारा दिलाकर ब्रह्मानन्द प्रदान करती है। कृपा द्वारा ही करोड़ों जीवन्मुक्त परमहंसों में किसी बड़भागी को ही प्रेमानन्द प्राप्त होता है। यथा-

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः। *(भाग. ६-१४-५)*

यथा - वेदव्यास, सनकादिक, शुकादिक।

उपर्युक्त सायुज्य मुक्ति को चैतन्य देव ने कैतव माना है यथा-

अज्ञानतमेर नाम कहिये कैतव। *(चै.च.)*

अर्थात् धर्म अर्थ काम की कामना रखने वाले अज्ञानियों से भी बड़ा अज्ञानी सायुज्य मुक्ति चाहता है। भागवत के प्रारम्भ में ही यथा-

'धर्मः प्रोज्झित कैतवः' *(भाग. १-१-२)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् भागवत में कैतव रहित (५ मुक्ति) धर्म ही है। शंकरानुयायी श्रीधर ने भी यह माना है।

यह तो ठीक है कि सायुज्य मुक्ति में प्रेमानन्द नहीं मिलता। अतः निन्दनीय है। किंतु शेष ४ मुक्ति में तो प्रेमानन्द मिलता है। इसकी निन्दा या त्याग क्यों कहा जा रहा है? दोहा लेखक का आशय यह है कि वास्तविक दास वही है जो कोई भी कामना अपने सुख के लिये न करे। और मुक्ति की कामना तो अपने लिये है। निष्काम भक्त तो श्रीकृष्ण सुखैक तात्पर्यमयी भक्ति ही करता है। श्रीकृष्ण के सुख के लिये ही सेवा चाहता है। एवं उनके सुख में ही सुख मानता है। अतः भागवत –

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(भाग. ३-२९-१३)

अर्थात् उपर्युक्त पाँचों मुक्तियों को श्रीकृष्ण के देने पर भी नहीं लेता। ब्रजांगनायें ही ऐसे निष्काम प्रेम की आचार्या हैं। उन्हीं की कृपा से ही ऐसा उच्चतम रस प्राप्त हो सकता है। आप सोच नहीं सकते कि ब्रजगोपियों की विरहावस्था क्या रही होगी। राधा विरह के वर्णन में संकेत किया गया है। यथा –

औौर्वस्तोमात्कटुरपि कथं दुर्बलेनोरसा मे,
तापः प्रौढ़ो हरिविरहजः सह्यते तन्न जाने।
निष्क्रान्ता चेद्भवति हृदयाद्यस्य धूमच्छटापि,
ब्रह्माण्डानां सखिकुलमपिज्वालया जाज्वलीति॥

अर्थात् यदि राधा विरह की आग में धुयें का आभास भी हृदय से बाहर निकल जाय तो समस्त विश्व भस्म हो जाय। इतनी विरहावस्था में भी वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहती हैं। यथा –

> सौख्यं नः स्यात् यदपि बलवद् गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे।
> यद्यल्पापिक्षतिरुदयते तस्य मागात्कदापि।
> अप्राप्तेऽस्मिन् यदपि नगरादार्तिरुग्रा भवेन्नः।
> सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत्तत्रवासं करोतु॥

अर्थात् यदि मेरे प्राणवल्लभ को मथुरा में रहकर ही सुख मिलता हो, तो वे कभी मेरे पास न आवें। भागवत में कितना अद्भुत प्रेम निरूपण है। यथा –

> यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
> तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥
> *(भाग. १०-३१-१९)*

अर्थात् विरह ज्वाला को शांत करने के लिये जब गोपियाँ श्यामसुन्दर के चरण के तलुओं को अपने हृदय से लगाती हैं तो अत्यन्त संभाल कर धीरे से रखती हैं कि कहीं मेरे कठोर स्तन उनके कोमल चरणों में चुभ न जाँय। यह प्रेम की निष्कामता की पराकाष्ठा है। कूड़ा कबाड़ा माँ-बाप स्त्री-पति आदि के प्रेमालिंगन में भी हम यह नहीं सोच सकते। एक मां १० दिन के विमुक्त शिशु को जोर से चिपटा लेती है। शिशु छटपटा जाता है। तब मां को ध्यान आता है कि मैंने स्वार्थ के लिये शिशु को कष्ट दिया। अस्तु वास्तविक एवं अंतिम रस निष्काम प्रेम में ही मिलता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो स्वामी सों चहइ कछु, सो नहिं दास कहाय।
सोउ स्वामी न कहाय जो, दासहिं आस लगाय॥ १६ ॥

भावार्थ - जो दास अपने स्वामी से कुछ चाहता है। वह दास नहीं है। इसी प्रकार जो स्वामी अपने दास से कुछ आशा रखता है, वह वास्तविक स्वामी नहीं है।

व्याख्या - भागवत में प्रह्लाद ने बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। यथा -

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ।
(भाग. ७-१०-४)

अर्थात् दास एवं स्वामी दोनों ही निष्काम होने चाहिये। संसारी दास एवं स्वामी दोनों ही स्वार्थी होते हैं। अतः सदा ही मानसिक अशांति रहती है। किंतु ईश्वरीय क्षेत्र में दोनों ही निष्काम होते हैं। वास्तव में भगवान् तो परिपूर्ण है ही वह मायाबद्ध से क्या चाहेगा? क्यों चाहेगा? और जीव क्या देगा? किंतु निष्काम भक्त भी ऐसा ही हो जाता है। यदि कोई मूर्ख दास कहे कि हमने भी अपना सर्वस्व दिया है तो सोचो कि उसका सर्वस्व है क्या? गंदा तन, गंदा मन आदि ही तो है। फिर वह भी तो स्वामी का ही दिया हुआ है। जीव का जीवन भी अपना नहीं है। फिर और क्या देगा?

हाँ - स्वामी ऐसा दयालु है कि जीव का प्रेमयुक्त दिया हुआ सब कुछ सहर्ष ले लेता है। यथा -

पंत्र पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९-२६, भाग. १०-८१-४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारांश यह कि निष्काम दास एवं स्वामी दोनों दाता बन जाते हैं जबकि संसार में दोनों याचक बने रहते हैं। ऐसे निष्काम प्रेम को नारद सरीखे अवतार ने भी अनिर्वचनीय कहा है। इस कथा के प्रेम में विभोर होकर स्वामी स्वयं को दास मान बैठता है। एवं दास स्वयं को स्वामी मान लेता है। भागवत कहती है। यथा –

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(भाग. ९-४-६३)

पुनः भागवत कहती है। यथा –

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।

(भाग. ११-१४-१६)

अर्थात् मैं ऐसे दास के हाथ की कठपुतली बन जाता हूँ। उनके चरणों की रज पाने के लिए उनके पीछे-पीछे चलता हूँ। हनुमान जी से भगवान् राम कहते हैं। यथा –

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥

(वा.रा.)

अर्थात् हनुमान के एक उपकार के बदले में प्राण देना होगा। शेष उपकारों का ऋणी तब भी बना रहना होगा।

सख्यभाव में भी सखाओं का घोड़ा बन जाते हैं। यथा –

उवाह भगवान् कृष्णः श्री दामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम्॥

(भाग. १०-१८-२४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपियों से यहाँ तक कहा है-

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेह शृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(भाग. १०-३२-२२)

अर्थात् देवों की आयु में भी तुम लोगों के ऋण से उऋण न होऊँगा।

एक गोपी कहती है कि प्रति गोबर की टोकरी उठवाने पर एक लोंदा माखन दूँगी। बालकृष्ण तैयार हो गये। किंतु दोनों अंगूठा छाप। अतः यह तय हुआ कि प्रति टोकरी उठाने पर नंदलाल के गाल पर एक गोबर का टीका लगाया जाय। इस प्रकार टीका लगाते लगाते गाल एवं भाल गोबरमय हो गया। फिर घर ले जाकर दर्पण दिखाती है। बलिहारी है ऐसे प्रेम की-।

गोमय मंडित भाल कपोलम्।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरि को नाम रूप गुन, हरिजन नित्य निवास।
सबै एक हरि रूप हैं, सब में सबको वास॥ १७॥

भावार्थ - श्रीकृष्ण एवं उनके नाम, रूप, गुण एवं धाम तथा भक्त सब एक ही हैं। क्योंकि सबमें सब का नित्य निवास है।

व्याख्या - श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं। उनकी सभी वस्तुओं का स्वरूप भी तद्रूप है। साधारण लोग समझते हैं कि संसार की भाँति उनके धामादि जड़ हैं किंतु ऐसा नही है। उनकी लकुटी, मुरली आदि सभी चेतन एवं श्रीकृष्ण स्वरूप हैं। जो कार्य श्रीकृष्ण कर सकते हैं, वही कार्य उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लकुटी एवं मुरली आदि भी करने में समर्थ हैं। अतः इनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है। जब दो ही नहीं हैं तो छोटे बड़े का प्रश्न ही कहाँ? विनोद में तो कोई श्रीकृष्ण को, कोई उनके नाम को, कोई उनके भक्त को बड़ा कह देता है। किन्तु वास्तव में भेदभाव मानना नामापराध है। आप कहेंगे कि यदि सब एक हैं तो उनके नामादि से हमारा काम क्यों नहीं बनता? इसका कारण हमारी इन्द्रिय मन बुद्धि का मायिक होना है। हम विश्वास ही नहीं कर पाते। सभी जीवों के भीतर भी श्रीकृष्ण सदा हैं। एवं अवतार काल में भी सब ने साकार रूप से भी अनन्त बार देखा है। किंतु कभी विश्वास नहीं किया।

कवनिउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा।

यदि सही गुरु मिल जाय और हम उस पर विश्वास कर लें, तभी हमारा लक्ष्य प्राप्त होगा। अन्यथा असम्भव है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सबै शक्ति हैं नाम में, मन! निशिदिन आराध।
पै नहिं शक्तिन लाभ तिन, किये नाम अपराध॥ १८॥

भावार्थ - श्रीकृष्ण के नाम में उनकी समस्त शक्तियाँ सदा हैं। अतः हे मन! तू निरन्तर स्मरण कर। किंतु एक बात याद रखना। वह यह कि नामापराध न होने पाये।

व्याख्या - आप लोगों ने कतिपय अद्वैतियों से सुना होगा कि नाम रूप मिथ्या है। किंतु यह मिथ्या नाम रूप मायिक जगत् का ही है। भगवान् का नहीं। चैतन्य देव ने कहा है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्,
तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि,
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

(गौरांग महाप्रभु-शिक्षाष्टक)

अतः नाम एवं नामी एक ही हैं। यह अकारण करुणाकर की कृपा है, जो उन्होंने अपने नाम में अपनी समस्त शक्तियाँ रख दी हैं। आप कहेंगे कि हमने अनन्त जन्मों में अनन्त बार हरि नाम लिया होगा। फिर हमारा कल्याण क्यों नहीं हुआ? इसका प्रमुख कारण नामापराध है। दूसरा कारण यह भी है कि हमने इस विश्वास से कभी हरि नाम ही नहीं लिया कि इसमें स्वयं श्रीकृष्ण हैं। प्रमुख बात है मन की। जब तक मन में श्रीकृष्ण या उनके नाम या उनके जन के प्रति पूर्ण विश्वास पूर्वक अनुराग न होगा, तब तक केवल वाणी या इन्द्रियों से की गई भक्ति अभिनय मात्र होगी। अतः शास्त्र कहते हैं कि -

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।' *(योगदर्शन)*

अर्थात् रसना से नाम लो। साथ में मन का लगाव करो।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंधन और मोक्ष का, कारण मनहि बखान।
याते कौनिउ भक्ति करु, करु मन ते हरिध्यान॥ १९॥

भावार्थ – बंधन और मोक्ष का कारण केवल मन ही है। अतः कोई भी भक्ति की जाय, मन से ध्यान अवश्य हो।

व्याख्या – प्रत्येक कर्म का कर्ता मन ही माना गया है। यह मन भी आत्मा की भाँति अनादि है। सदा साथ रहता है। वेद कहता है – यथा –

एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्ध्नो
वान्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति
प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनुत्क्रामन्ति॥

(*बृहदा.* ४-४-२)

अर्थात् मृत्यु के बाद यह इन्द्रिय मन बुद्धि (सूक्ष्म) सदा साथ जाते हैं। जिन जिनके साथ जाता है, उन्हीं उन्हीं के साथ पुनः जन्म लेता है। सभी पूर्व संस्कार मन में ही रहते हैं। सारा खेल मन का है। यदि वह मायिक जगत् में आसक्त हुआ तो कर्मबंधन। यदि वह ईश्वरीय जगत् में अनुरक्त हुआ तो मुक्ति एवं प्रेमानन्द प्राप्ति। इन्द्रियाँ तो स्वयं कुछ कर भी नहीं सकतीं। बिना इन्द्रियों के ही मन स्वप्न में इन्द्रियों का कर्म कर लेता है किंतु बिना मन के कोई इन्द्रिय कुछ नहीं कर सकती। भक्ति अनन्त प्रकार की हो सकती है। किंतु प्रमुख नवधा भक्ति ही मानी गई है। उसमें भी प्रमुख स्मरण युक्त कीर्तन है। अतः मन से ही भक्ति करने पर ध्यान देना है। साथ में इन्द्रियाँ भी रहें। किंतु केवल इन्द्रियों की भक्ति भक्ति नहीं है। पीछे बता चुके हैं कि इन्द्रिय मात्र के कर्म को भगवान् कर्म ही नहीं मानते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राम नाम सब सत्य कह, जब लौं जात मसान।
लौटत ही पुनि जगत कहँ, सत्य मान धनि ज्ञान॥ २०॥

भावार्थ – संसार में शव को श्मसान ले जाते समय सभी 'राम नाम सत्य है', ऐसा बोलते हैं। किंतु श्मसान से लौटते समय संसार को ही सत्य मान लेते हैं। ऐसे अज्ञान युक्त ज्ञान की बलिहारी है।

व्याख्या – प्राचीन काल से ही पूर्वज महर्षियों ने नियम बना दिया कि मृतक को श्मसान ले जाते समय 'राम नाम सत्य है', ऐसा बोला करो। यही सत्य भी है ऐसा निर्णय भी किया करो। ताकि क्षणिक संसार से मन में वैराग्य उत्पन्न हो। एवं तुम्हारी उधार (फिर कर लेंगे) करने की प्रवृत्ति समाप्त हो। भागवत कहती है कि –

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

(भाग. ७-६-१)

अर्थात् कुमारावस्था में ही साधना प्रारम्भ कर दो। क्योंकि अगली अवस्था मिले न मिले। किंतु हम लोग केवल शब्द बोल देते हैं। यदि कोई मृतक श्मसान ले जाते समय उठ बैठे तो राम नाम सत्य का नारा बंद कर देंगे। ऐसा क्यों? अगर आपकी लड़की पालकी पर बैठकर ससुराल जा रही हो और कोई राम नाम सत्य बोल दे तो एक काण्ड खड़ा हो जाय। महाभारत में एक कथा है। तदनुसार एक जलस्थ यक्ष ने युधिष्ठिर से ६० प्रश्न पूछे थे। उसमें एक प्रश्न यह था। यथा – **किमाश्चर्यम्?** अर्थात् सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महाभारत)

अर्थात् प्रतिदिन लोग मर रहे हैं। यह देखते हुये भी शेष लोग स्वयं को अमर मानते हैं। अतः भविष्य की बड़ी-बड़ी योजनायें (संसारी) बनाते हैं।

तात्पर्य यह कि यदि सौभाग्यवश तत्त्वज्ञान भी हो जाय। और उधार करता जाय, तो कभी कुछ न कर सकेगा। अतः वेद कहता है। यथा-

न श्वः श्व उपासीत को हि पुरुषस्य श्वो वेद। *(वेद)*

अर्थात् कल का उधार न करो। कल का दिन न मिले तो मानवदेह छिन जायगा।

संसार का सुख क्या है? एवं संसार की प्राप्ति पर क्या अनुभव में आता है? इन सब बातों पर गंभीर विचार करना चाहिये। संसार पाते ही लोभ का अधिकार हो जाता है। एवं न प्राप्त होने पर या छिन जाने पर क्रोध पैदा होता है ऐसे दो तरफा पतन से भी वैराग्य नहीं होता। यह महान् आश्चर्य है। अतः भगवान् को ही सत्य मानकर उनमें ही मन का लगाव करना चाहिये। शास्त्रों में तो संसार के अभाव को ही भगवत्कृपा माना गया है। यथा -

तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्।

(भाग. १०-२७-१६)

अर्थात् मैं जिस पर कृपा करता हूँ उसका मायिक संसार छीन लेता हूँ किंतु हम लोग तो उलटा समझते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन रूप श्रीकृष्ण को, वेदव्यास बताय।
ब्रह्म और परमात्मा, अरु भगवान कहाय॥ २१ ॥

भावार्थ - वेदव्यास ने परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण के ३ रूप बताये हैं। जिन्हें ब्रह्म और परमात्मा एवं भगवान् कहा जाता है।

व्याख्या - वेदव्यास ने भागवत में कहा है। यथा -

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(भाग. १-२-११)

अर्थात् अद्वयज्ञान तत्त्व ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं। तत्त्व का तात्पर्य है स्वरूप। वह तत्त्व अद्वय ज्ञान है।

'ज्ञानं चिदेक रूपम्' *(तत्त्व संदर्भ)*

अर्थात् चिद्वस्तु ही ज्ञान है। ज्ञान शब्द से चित् (चेतन) एवं चित् शब्द से सच्चिदानन्द का बोध होता है। इसी से वेद ने

'सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', *(बृहदा. ३-९-२८)*

कहा है। अतः श्रीकृष्ण का स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म है।

कृष्ण शब्द का अर्थ भी यही है। यथा -

कृषि शब्दो हि सत्तार्थोणश्चानन्द रूपकः।
सत्ता स्वानन्दयोर्योगाच्चित् परं ब्रह्मचोच्यते॥

(वृ. गौ. तंत्र)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण सशक्तिक ब्रह्म हैं। अतः सत् से संधिनी शक्ति, चित् से संवित् शक्ति, एवं आनन्द से ह्लादिनी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इन तीनों को मिलाकर संक्षेप में चित् भी कहते हैं। वह अद्वय ज्ञान तत्त्व परब्रह्म श्रीकृष्ण, अपनी संधिनी शक्ति से स्वयं की सत्ता तथा समस्त जीवों की सत्ता की रक्षा करता है। संवित् शक्ति से स्वयं को एवं जीवों को भी ज्ञानयुक्त करता है। ह्लादिनी शक्ति से स्वयं को एवं जीवों को भी आनन्द प्रदान करता है।

अब यह प्रश्न आता है कि यह अद्वय ज्ञान तत्त्व क्यों कहलाता है। अद्वय का तात्पर्य क्या है ? उत्तर यह है कि –

१. कोई भी तत्त्व अद्वय तभी माना जायगा, जब वह स्वयं सिद्ध हो। दूसरे पर निर्भर न हो।

२. उस तत्त्व के समान दूसरा तत्त्व न हो।

३ . उस तत्त्व की विजातीय वस्तु भी न हो।

४. उसकी अपनी ही शक्ति सहायिका रहे।

भावार्थ यह कि अद्वय ज्ञान तत्त्व सजातीय विजातीय स्वगतभेद शून्य हो। अब इन तीनों पर विचार कर लीजिये।

१. **सजातीय भेद शून्य** – श्रीकृष्ण के ही अभिन्न स्वरूप नारायण एवं समस्त अवतार हैं। वे सब श्रीकृष्ण पर निर्भर हैं। अतः सजातीय भेद शून्य हैं। जीव भी चित् (चेतन) है। एवं श्रीकृष्ण की सत्ता पर निर्भर है। यह सजातीय भेद शून्य हुआ।

२. **विजातीय भेद शून्य** – श्रीकृष्ण ब्रह्म चिद्रूप हैं। उनका विजातीय तत्त्व जड़ है। किंतु वह जड़ प्रकृति भी श्रीकृष्ण से ही नियन्त्रित है। अतः यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजातीय भेद शून्य हुआ।

३. **स्वगत भेद शून्य** - श्रीकृष्ण में देह एवं देही का भेद नहीं है। जबकि जीवों का देह पृथक् होता है। तथा प्राकृत होता है। भगवान् का देह भगवान् ही है। यह स्वगतभेद शून्य होता है।

यथा-

आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः

पुनश्च -

आनन्दचिन्मय सदुज्वल विग्रहस्य। *(ब्र.सं.)*

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि अद्वय ज्ञान तत्त्व श्रीकृष्ण ही हैं। अद्वितीय भी है।

यथा -

'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' *(श्वेता. ६-८)*

उपर्युक्त अद्वय ज्ञान तत्त्व रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण का तीन अभिन्न रूप होता है। यथा १ ब्रह्म, २ परमात्मा, ३ भगवान्। जैसे जल, बर्फ एवं गैस तीनों ही जल के ही स्वरूप हैं। ऐसे ही ब्रह्म, परमात्मा, एवं भगवान्, तीनों एक ही के ३ रूप हैं। यह ३ प्रकार का कल्पित भेद जीवों की इच्छापूर्ति के हेतु ही बनाया गया है। जैसे बादल युक्त सूर्य (ब्रह्म), बादल रहित सूर्य (परमात्मा), खुर्दबीन से दृष्ट सूर्य (भगवान्) वस्तुतः एक ही हैं।

तात्पर्य यह कि ब्रह्मानन्द भी अनन्त एवं नित्य है किंतु उससे सरस सगुण साकार परमात्मानन्द है। तथा उस परमात्मानन्द से भी सरस लीला परिकर युक्त कृष्णानन्द है। इसी से कृष्ण गुणानुवाद के एक श्लोक को सुनकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्माराम पूर्णकाम परम निष्काम निर्ग्रंथ परमहंस शुकदेव अपना ब्रह्मानन्द भुलाकर बरबस प्रेमानन्द (भगवदानन्द) में विभोर हो गये। शुकदेव एवं सनकादिक, व्यासादिक तथा ब्रह्मादिकों ने तीनों रसों का अनुभव किया है। किंतु अंत में श्रीकृष्णानन्द में ही सदा को लीन हो गये। अतः स्वप्न में भी भेद बुद्धि न आने पाये।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सर्वशक्ति संपन्न हो, शक्ति विकास न होय।
सत चित आनँद रूप जो, ब्रह्म कहावे सोय॥ २२॥

भावार्थ - जो समस्त ईश्वरीय शक्तियों से युक्त हो किंतु सत्ता स्थापन को छोड़ कर किसी शक्ति का विकास न हो वह सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म कहलाता है।

व्याख्या - ज्ञानमार्गी (अद्वैती) स्वयं को ज्ञान शक्ति संपन्न मानकर कहते हैं कि ब्रह्म निःशक्तिक है। उनका कहना है कि माया (जड़) शक्ति ब्रह्म में कैसे रहेगी? जरा उनसे पूछो कि कोई शक्ति, शक्तिमान् में न रहेगी तो और कहाँ रहेगी। इस पर वे कहते हैं कि शक्ति है ही नहीं। शक्ति होने की बात ही मिथ्या है। फिर उनसे पूछो कि शक्ति के बिना ब्रह्म ने सृष्टि कैसे की? ब्रह्म के संकल्प से ही तो सृष्टि हुई। यथा वेद-

सोऽकामयत्। *(तैत्तिरीयो. २-६)*
स ईक्षत। *(ऐतरेयो. १-१-१, १-३-११)*
स ईक्षांचक्रे। *(प्रश्नो. ३-६)*
तदैक्षत। *(छान्दो. ६-२-३)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेद ने यह भी कहा है कि उसने संकल्प ही नहीं किया, वरन् देखा, मुसकराया, श्वास लिया, सोया। यथा वेद –

विक्षितमस्य पंचभूतानि। स्मितमेतस्य चराचरम्।

सुप्तं चास्य महाप्रलयः।

इस पर वे अद्वैती घबड़ाकर कहते हैं कि सृष्टि काल में ही शक्ति आ गई होगी। किंतु उनसे कहो कि जब ब्रह्म के सिवा कुछ था ही नहीं। और ब्रह्म के भीतर शक्ति तुम मानते ही नहीं तो आ कहाँ से जायेगी ? इस पर झल्लाकर वे कहते हैं कि सृष्टि हुई ही नहीं। सब मन की कल्पना है। पुनः उनसे पूछो कि यह कल्पना या स्वप्न किसने किस शक्ति से देखा ? बिचारे चुप हो गये। अच्छा एक अन्तिम प्रश्न और पूछ लो कि अद्वैती जी ! ब्रह्म की सत्ता की रक्षा किसी शक्ति से ही तो होती होगी। फिर तो वह सशक्तिक हो गया।

अद्वैती ज्ञानीजन बिंब प्रतिबिंबवाद मानते हैं। अतः इस विषय में भी कुछ बात हो जाय। हाँ तो अद्वैती जी ! ब्रह्म निराकार ही है। और अंतःकरण भी निराकार ही है न ? हाँ दोनों निराकार हैं। अब यह बताओ कि प्रतिबिंब साकार वस्तु का ही पड़ता है या निराकार का भी प्रतिबिंब पड़ता है ? यह भी बताओ कि साकार वस्तु का प्रतिबिंब, साकार वस्तु पर पड़ता है या निराकार वस्तु पर भी पड़ता है ? जी ! साकार वस्तु का ही प्रतिबिंब साकार वस्तु पर ही पड़ता है। तो फिर निराकार ब्रह्म का प्रतिबिंब निराकार अंतःकरण पर कैसे पड़ा ? अच्छा एक बात और बताने का कष्ट करो। वह यह कि ब्रह्म कर्ता भोक्ता है या अकर्ता अभोक्ता है ? जी ! ब्रह्म अकर्ता अभोक्ता ही है। अब यह बताओ कि बिंब ब्रह्म जब अकर्ता अभोक्ता है तो उसका प्रतिबिंब कर्ता भोक्ता कैसे हो गया ? क्योंकि शंकर ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जन्माद्यस्य यतः, (ब्र.सू. १-१-२)

ब्रह्मसूत्र में आत्मा को अनन्त एवं कर्ता भोक्ता माना है। यदि कोई न माने तो फिर वेदान्त का उपदेश श्रवण, मनन, निदिध्यासन किसको करना है ? और क्यों ? अस्तु ब्रह्म सशक्तिक ही है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सर्वशक्ति संयुक्त हो, नाम रूप गुण होय।
लीला परिकर रहित हो, परमात्मा है सोय॥ २३॥

भावार्थ - जो सगुण साकार दिव्य शरीरयुक्त हो एवं सर्वशक्ति संपन्न हो। उसके अनन्त नाम, रूप, गुण भी हों। किंतु परिकर तथा लीला न हो, वह परमात्मा कहलाता है।

व्याख्या - पूर्व निरूपित ब्रह्म तो निर्गुण निर्विशेष निराकार है किंतु परमात्मा सगुण सविशेष साकार है। ब्रह्म का नाम रूप, गुणादि नहीं है। किंतु परमात्मा का नाम, रूप गुणादि भी है। परमात्मा का सगुण साकार रूप इतना मधुर होता है कि ब्रह्मानन्द में गर्भजात लीन सनकादिक परमहंस, बैकुण्ठ में नारायण में अपने ब्रह्मानन्द को लीन करके भक्त बन गये। फिर भी परमात्मा में सम्पूर्ण शक्तियों का सम्पूर्ण विकास नहीं होता। अतः परमात्मा को अल्प शक्तिक ब्रह्म भी कहते हैं। साथ ही परमात्मा में लीला एवं परिकर भी नहीं होते। इनके लोक का नाम बैकुण्ठ है, जहाँ ऐश्वर्य प्रधान है। किंतु माधुर्य का विकास कम मात्रा में होता है। जैसे ब्रह्म का उपासक ज्ञानी कहलाता है, ऐसे ही परमात्मा का उपासक योगी कहा जाता है। ब्रह्म में स्वरूपानन्द प्राप्त होता है। जबकि परमात्मा में अनुभवानन्द मिलता है। यह ध्यान रहे कि ब्रह्म या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मा का आनन्द अनन्त एवं नित्य ही होता है। केवल सौरस्य की विलक्षणता का ही अन्तर होता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सर्वशक्ति प्राकट्य हो, लीला विविध प्रकार।
विहरत परिकर संग जो, तेहि भगवान पुकार ॥ २४ ॥

भावार्थ - जिस स्वरूप में समस्त शक्तियों का पूर्ण प्राकट्य हो एवं अनन्त नाम, रूप, गुण, लीला, धाम तथा परिकर भी हों। नित्य विहार भी करते हों। वह भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप है।

व्याख्या - पूर्व में बताया गया कि परमात्मा का नाम, रूप, गुण होता है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के भी हैं। किंतु श्रीकृष्ण अपने परिकरों के साथ नित्यविहार लीलायें भी करते हैं। यह विशेषता है। तथा उनके रूपादि में भी माधुर्य विशेष है। इस स्वरूप में सभी शक्तियों का पूर्ण प्राकट्य होता है। किंतु इस स्वरूप में पूर्ण ऐश्वर्य होते हुए भी ऐश्वर्य, माधुर्य पर कभी भी अधिकार नहीं कर सकता। परमात्मा का ऐश्वर्य स्वतंत्र है किंतु भगवान् का ऐश्वर्य ब्रज में गुप्त रूप से ही सेवा करता है। इस रूप में इतना माधुर्य है कि स्वयं नारायण एवं लक्ष्मी भी हठात् मुग्ध हो जाते हैं। युगों तपस्या करने पर भी लक्ष्मी जी को महारास माधुर्य नहीं मिला।

इस स्वरूप में पूर्ण ऐश्वर्य, माधुर्य, तेज आदि के साथ सर्वाधिक गुण भक्तवश्यता का है। श्रीकृष्ण स्वयं को सदा नर ही मानते हैं। एवं उनके सखा सखी भी नर ही मानते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण ही पूर्व निरूपित ब्रह्म एवं परमात्मा के आधार हैं। मायिक जगत् तथा परव्योम एवं गोलोक के अध्यक्ष हैं। श्रीकृष्ण ने अपना विराट् ऐश्वर्य रूप अर्जुन, यशोदा, ब्रह्मा आदि को भी दिखाया था। किंतु ब्रजरसिक ऐश्वर्य रूप को नहीं चाहता। केवल माधुर्य का ही रसिक रहता है। श्रीकृष्ण की ऐश्वर्य लीला भी माधुर्य से ओत-प्रोत रहती है। यथा - कालिय नाग दमन में फण पर नृत्य करना।

श्रीकृष्ण ही का अल्पशक्ति प्रकट स्वरूप परमात्मा है एवं अप्रकट रूप ब्रह्म है। ३ रूप साधकों की भिन्न-भिन्न रुचि के कारण बनाये हैं। जैसे-अद्वैत ही चाहता है तो उसे ब्रह्म रूप की उपासना करनी है।

विनोद में ब्रह्म या परमात्मा के लिये रसिक लोग हेय शब्दों का प्रयोग कर देते हैं किंतु वे जानते हैं कि मेरे ही प्राणवल्लभ के स्वरूप वे भी हैं। केवल रस वैलक्षण्य का अन्तर है। जैसे कोई दूर से आम (पका हुआ) देखता है (ब्रह्म), कोई देखता एवं सूंघता भी है। कोई देखता सूंघता एवं चूसता भी है। आम वही एक है। ऐसे ही ब्रह्म दूर से देखने वाला तथा परमात्मा रूप- देखने, सूंघने वाला तथा भगवान् का स्वरूप- देखने, सूंघने एवं चूसने वाला है। यथा एक ही गन्ने का गुड़, चीनी, मिश्री ये तीन अभिन्न रूप हैं। ऐसे ही पूर्ण अभेद मानना है। एक बात अवश्य ध्यान देने की है कि ब्रह्म कृपा नहीं करता। अतः ब्रह्मज्ञान के हेतु ज्ञानी को भी श्रीकृष्ण की शरण जाना होगा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म-प्राप्ति-पथ ज्ञान है, परमात्मा-पथ योग।
कृष्ण-प्राप्ति-पथ भक्ति है, अधिकारी सब लोग॥ २५॥

भावार्थ - ब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग को ज्ञानमार्ग तथा परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग को योग मार्ग एवं श्रीकृष्ण भगवान् की प्राप्ति के मार्ग को भक्ति मार्ग कहते हैं।

व्याख्या - निर्गुण निर्विशेष निराकार ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग ज्ञानमार्ग कहलाता है। इस मार्ग के अधिकारी को साधन चतुष्टय सम्पन्न पूर्ण निर्विण्ण होना चाहिये। स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है। यथा -

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्।

(गीता १२-५)

अर्थात् इस मार्ग में अत्यन्त क्लेश है। मेरे विचार से संप्रति ५ अरब मनुष्यों में ५ सौ व्यक्ति भी अधिकारी न मिलेंगे। मार्ग में चलने के पश्चात् भी नाना विघ्न हैं। यथा -

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होइ घुणाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

फिर अंत में ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के हेतु भक्ति की ही शरण लेनी होगी तथा ब्रह्मज्ञान हो जाने पर भी यदि श्रीकृष्ण को देख ले। अथवा मुरलीध्वनि ही सुन ले तो अपना ब्रह्मज्ञान बरबस भुला देता है। यथा- जनक-

बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।

ब्रह्मादिक, उद्धवादिक, भक्ति रस रसिक ब्रजवासियों की चरण रज चाहते हैं। एवं तदर्थ ब्रज में पशु, पक्षी एवं वृक्ष बनने का वरदान माँगते हैं। माँ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पेट में रहने वाले शिशु एवं उत्पन्न होकर विविध लीला युक्त शिशु में कितना अन्तर है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ज्ञानी अरु योगी लहैं, निज स्वरूप को ज्ञान।
हरि स्वरूप जाने नहीं, माया माहिं भुलान॥ २६॥

भावार्थ – ज्ञानी एवं योगी (भक्ति रहित) अपने लक्ष्य पर पहुँच कर भी माया से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि उन दोनों ने आत्मा का ही स्वरूप जाना है, परमात्मा का नहीं जाना।

व्याख्या – ज्ञानी एवं योगी अपनी साधना से केवल अविद्यात्मिका (स्वरूपावरिका) माया का ही नाश कर पाता है किंतु विद्यात्मिका (गुणावरिका) माया का नाश नहीं कर सकता। विद्या माया का नाश भगवत्कृपा से ही होता है। अतः आत्मज्ञान प्राप्त करना तो ब्रह्म का आंशिक ज्ञान ही है। पूर्णज्ञान के हेतु गीता –

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

(गीता १८-५४)

अर्थात् आत्मज्ञान के पश्चात् भक्ति से ही ब्रह्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानी का पतन अवश्यंभावी है। अतः भागवत –

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।

(भाग. १०-२-३२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मार्कण्डेय पुराण -

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥

(मार्कण्डेय पुराण)

मेरी राय में तो सम्यक् अन्तःकरणशुद्धि भी भक्ति के बिना असंभव है। यथा भागवत -

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥

(भाग. ११-१४-२२)

शंकर ने भी कहा है -

शुद्धयति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोज भक्तिमृते।

(शंकराचार्य)

अंतःकरण शुद्धि हो भी जाय तो मायानिवृत्ति तो कृपा साध्य ही है। अतः भागवत में उद्धव परमहंस कहते हैं। यथा-

अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन।
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययामी विहता न मानिनः॥

(भाग. ११-२९-३)

अर्थात् ज्ञान एवं योग से हमारा लक्ष्य ही न प्राप्त होगा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानी अरु योगी जबै, कृष्ण-भक्ति उर आन।
कृष्ण कृपा ते ही तबै, पावे ब्रह्म ज्ञान॥ २७॥

भावार्थ – ज्ञानी एवं योगी, श्रीकृष्ण भक्ति के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ब्रह्म अकर्ता है।

व्याख्या – पूर्णज्ञानी एवं पूर्णयोगी भी जब तक श्रीकृष्ण भक्ति नहीं करता, तब तक मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। वस्तुतः ज्ञानी आदि साधना से अहं तत्त्व का भेदन तो कर सकते हैं। किन्तु महान् एवं प्रकृति का भेदन केवल श्रीकृष्ण कृपा से ही होता है। और कृपा प्राप्ति के हेतु भक्ति ही एकमात्र उपाय है।

जैसा कि पूर्व में बता चुके हैं। ज्ञान एवं योग के अधिकारित्व में ही बड़ी-बड़ी शर्तें हैं। फिर मार्ग में भी नाना विघ्न हैं। फिर यदि हम उस मार्ग के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच भी जायँ तो आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति एवं परमानन्द प्राप्ति का लक्ष्य नहीं प्राप्त हो सकता। फिर नित्य दासत्व आदि प्राप्त करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उद्धव ने स्वयं कहा है। यथा –

सुदुश्चरामिमांमन्ये योगचर्यामनात्मनः।
यथाञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत् तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत॥

(भाग. ११-२९-१)

फिर भक्ति मार्ग के अधिकारित्व एवं मार्ग में भगवान् द्वारा योगक्षेम वहनत्व पर भी विचार करना है। वेदव्यास –

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्या सुलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्तौ किमर्थं क्रियते प्रयत्नः॥

(वेदव्यास)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् भक्ति को छोड़कर भोले लोग ही अन्य मार्ग अपनाते हैं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

कोटिन ज्ञानिन मध्य कोउ, प्रेम-सुधा-रस पाय।
जिमि सनकादि शुकादि मन, ब्रज-रस रहे डुबाय॥ २८॥

भावार्थ - करोड़ों ज्ञानियों में किसी बड़भागी को ही प्रेम प्राप्त होता है। जैसे सनकादिक शुकादिक परमहंस ब्रजरस में डूब गये।

व्याख्या - किसी किसी मुक्त को भी प्रेमानन्द प्राप्त हो जाता है। किंतु ऐसा करोड़ों मुक्तात्माओं में भी किसी-किसी को ही होता है। यद्यपि यह आश्चर्य है। क्योंकि वेद कहता है -

'न स पुनरावर्तते' *(छान्दो. ८-१५-१)*

किंतु वेद ही यह भी कहता है कि -

'मुक्ता अपि ह्येनं उपासते।'

अद्वैती शंकर ने भी कहा है कि -

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥

(शंकराचार्य)

तात्पर्य यह कि मुक्त का पुनर्जन्म असम्भव है। फिर भी होता है इसका रहस्य यह है कि जिस ज्ञानी ने पूर्व में भक्ति विशेष की है उन्हीं भक्ति संस्कारी मुक्तात्माओं पर भगवत्कृपा हो जाती है सनकादिक (जन्मजात परमहंस) शुकादिक उदाहरण हैं। जो भी कारण हो किंतु यह तो सिद्ध ही हो गया कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानी ब्रह्म नहीं बन जाता, वरन् ब्रह्म में लीन ही होता है। यही मत भक्तों का भी है।

वेद भी कहता है – **'परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।'** *(मुण्डको. ३-२-८)*

पुनः **'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।'** *(मुण्डको. ३-१-३)*

गीता भी – **'मम साधर्म्यमागताः'** *(गीता १४-२)*

अस्तु यह भी सिद्ध हो गया कि जीवात्मा ही परमात्मा नहीं है वरन् अंश है। तथा पृथक् सत्ता है। तभी तो ब्रह्म से निकलकर शरीर धारण करता है। जीव में ब्रह्म व्याप्त है। अतः जीव को ब्रह्म कह दिया गया है। वस्तुतः जीव दास ही है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

कृष्ण-कृपा बिनु जाय नहिँ, माया अति बलवान।
शरणागत पर हो कृपा, यह गीता को ज्ञान॥ २९॥

भावार्थ – यह माया शक्ति इतनी बलवती है कि शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के बिना नहीं जा सकती। और यह कृपा भी केवल शरणागत जीव पर ही होती है। यह संपूर्ण गीता का सारभूत ज्ञान है।

व्याख्या – माया, श्रीकृष्ण की जड़, बहिरंगा शक्ति है एवं श्रीकृष्ण की ही शक्ति से चैतन्यवत् कार्य करती है। अतः मायाशक्ति भी श्रीकृष्ण के समान ही है। अतः महानतम ज्ञानी, योगी, तपस्वी भी साधना द्वारा माया को नहीं जीत पाते। गीता के प्रारम्भ से अंत तक केवल शरणागति पर ही जोर दिया है और कहा है –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७-१४)

अर्थात् मेरी शरण आने पर ही (एव शब्द का अर्थ 'ही, होता है) कोई इस माया से उत्तीर्ण हो सकता है। अंत में भी कहा है यथा -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(गीता १८-६६)

शंकर को छोड़कर शेष सभी गीता भाष्यकारों ने इस महामंत्र का शरणागति परक ही अर्थ किया है। यहाँ भी '**एक,** शब्द दिया है। इसी अन्तिम गुह्यतम गीता ज्ञान को पाकर ही अर्जुन का मोह भंग हुआ एवं वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। उस समय भी अर्जुन ने यही कहा था।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

(गीता १८-७३)

अर्थात् मैं अज्ञान मुक्त हो गया और अब युद्ध अवश्य करूँगा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जिमि हो शीत निवृत्त तिन, जिन ढिग अगिनि सिधार।
तिमि हो कृपा तिनहिं जिन, मन जाये हरि द्वार॥ ३०॥

भावार्थ - जिस प्रकार आग के पास जाने से ठंड चली जाती है, उसी प्रकार जिसका मन श्रीकृष्ण की शरण में चला जाता है, उस पर श्रीकृष्ण की कृपा हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – कुछ भोले लोग यह आक्षेप करते हैं कि श्रीकृष्ण को अकारण कृपालु क्यों कहते हैं, जबकि संसार बना हुआ है कुछ पर कृपा हो चुकी है, कुछ पर नहीं हुई। यह समदर्शिता कैसी ? इसका उत्तर यह है – किसी ठंड से ठिठुरते हुये व्यक्ति से अग्नि, बिना कुछ मूल्य लिये केवल पास जाने से गर्मी प्रदान कर देती है। वैसे ही बिना साधना रूपी मूल्य लिये ही मन की शरणागति से श्रीकृष्ण कृपा कर देते हैं। जो इस कृपा से दूर रहते हैं, उन पर माया की कृपा होती रहती है। मन जब माया के पास रहेगा तो माया का फल मिलेगा। जब श्रीकृष्ण के पास जायगा तो श्रीकृष्ण का फल मिलेगा। सीधी सी बात तो है। उपासना शब्द (उप् + आस् + ल्युच् प्रत्यय) का अर्थ ही है पास जाना। कोई निर्धन केवल धनवान् के पास जाकर धन माँगे तो यह दान कृपा ही तो कहा जायगा। फिर श्रीकृष्ण के यहाँ माँगना भी नहीं पड़ता यथा वेदव्यास –

तदप्य प्रार्थितोध्यातो ददाति मधुसूदनः ॥ *(वेदव्यास)*

अर्थात् मन जैसे ही मनमोहन के पास गया, बस–वैसे ही श्रीकृष्ण ने उसे प्रेमधन से मालामाल कर दिया।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

मन! मैं को मत छोड़ तू, दास जोड़ दे और।
मेरा भी रख साथ में, सो रसिकन सिरमौर॥ ३१ ॥

भावार्थ – हे मन! तू मैं को मत छोड़। वरन् मैं के आगे दास को और जोड़ दे (मैं दास हूँ) मेरा भी मत छोड़। वरन् मेरा के आगे रसिक शेखर श्रीकृष्ण जोड़ दे। (मेरे स्वामी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – अद्वैत मत में आत्मा को केवल ज्ञानस्वरूप माना गया है। ज्ञाता नहीं माना। वे लोग मैं एवं मेरे को ही अज्ञान मानते हैं। उसी को समाप्त करने की साधना भी करते हैं।

शास्त्रों में भी –

ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्।

(महाभारत)

मैं अरु मोर तोर तै माया। अर्थात् मैं मेरा, तू तेरा ही माया है किंतु इसका आशय यह है कि मायिक देह को मैं न मानो एवं देह सम्बन्धी विषयों को मेरा न मानो। यह त्याज्य है किंतु आत्मा तो ज्ञाता है। यथा वेद –

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता
विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते।

(प्रश्नो. ४-९)

वेदान्त भी कहता है। यथा –

'ज्ञोऽत एव।' *(ब्र. सूत्र २-३-१८)*

अतः हे मन! तू आत्मा को ही मैं मान एवं आत्मा के अंशी, माता, पिता, भ्राता, भर्ता सर्वस्व श्यामसुन्दर को ही मेरा मान। साथ में यह भी मान कि मैं श्यामसुन्दर का नित्य दास हूँ एवं श्यामसुन्दर हमारे स्वामी ही हैं। इस प्रकार मान लेने पर श्यामसुन्दर बिना किसी साधना के ही कृपा कर देते हैं एवं माया समाप्त कर देते हैं। इतना ही नहीं वरन् उसके दास बन जाते हैं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुझ! समुझ सों श्याम को, समुझ सका नहिं कोय।
समुझ मिलइ जब श्याम की, समुझ सकै बस सोय॥ ३२॥

भावार्थ - हे बुद्धिदेवी! तुम अपने बल से श्यामसुन्दर को नहीं समझ सकती। उनकी कृपादत्त बुद्धि से ही वे समझ में आयेंगे।

व्याख्या - भगवान् के समझने के विषय में वेद कहता है।

यथा -

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

(केनो. २-३)

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।

(केनो. २-१)

भागवत यथा -

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा॥

(भाग. १०-८७-२४)

गीता यथा - **मां तु वेद न कश्चन।** *(गीता ७-२६)*

रामयाण यथा - **राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।**

अर्थात् भगवान् को महानतम बुद्धिमान् भी नहीं जान सकता यहाँ तक कि ब्रह्मा शंकरादि भी नहीं जान सकते। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः।

(भाग. २-६-३६)

विधि हरि शंभु नचावन हारे,
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा और तुमहिं को जाननिहारा।

अतः बुद्धि की गति ही नहीं है। यदि बुद्धि ग्राह्य भगवान् हो जाय तो बुद्धि को ही भगवान् मानना होगा। किंतु अनेक जीवों ने जाना भी है। वेद कहता है। यथा –

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

(श्वेता. ३-८)

इसका रहस्य यह है कि श्रीकृष्ण की बुद्धि से ही श्रीकृष्ण को जाना जा सकता है। और वह बुद्धि तभी प्राप्त होगी जब जीव, श्रीकृष्ण के शरणापन्न होगा। इसी भाव से गीता कहती है। यथा –

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०-१०)

अतः हे बुद्धिदेवी! तुम श्रीकृष्ण की शरण चली जावो बस – तुम्हारा काम बन जायगा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्याम समुझ से श्याम को, समुझ सके सब कोय।
श्याम समुझ तब मिलइ जब, समुझ समर्पित होय॥ ३३ ॥

भावार्थ – श्यामसुन्दर की बुद्धि से ही वे समझ में आयेंगे ऐसा समझ कर अपनी समझ (बुद्धि) को श्यामसुन्दर के चरणों में समर्पित कर देना चाहिये।

व्याख्या – मायाबद्ध जीवों की बुद्धि मायिक है। माया से ही उत्पन्न है। अतः मायिक विषयों का ही आंशिक ज्ञान प्राप्त कर सकती है। आंशिक इसलिये कह रहा हूँ कि पूर्णज्ञान तो तभी कहा जायगा, जब माया के मूल रूप भगवान् श्रीकृष्ण का ज्ञान हो जाय। और ऐसा ज्ञान तभी हो सकता है, जब जीव अपनी बुद्धि को श्रीकृष्ण के चरणों में शरणापन्न कर दे। शरणापन्न करने से ही वे अकारण करुण श्रीकृष्ण, कृपा द्वारा अपनी दिव्य बुद्धि प्रदान कर देंगे। तभी हम उस श्रीकृष्ण बुद्धि से उनको जान सकेंगे। इसी प्रकार उनकी दी हुई दिव्य दृष्टि से ही उनको देख सकेंगे। एवं उनके शब्द, स्पर्श, रस आदि का अनुभव कर सकेंगे। अन्यथा तो अपनी मायिक वृत्ति का ही लाभ पायेंगे। यथा भागवत –

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥

(भाग. १०-४३-१७)

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

अर्थात् हमने अनन्त बार भगवान् के अवतार को देखा है, किन्तु वे मायिक ही दिखाई पड़े।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे प्राकृत देह की, आत्मा 'जीव, बखान।
ऐसे ही या जीव की, आत्मा 'श्याम, सुजान॥ ३४॥

भावार्थ - जिस प्रकार पाँच भौतिक देह की आत्मा जीव है। ऐसे ही जीव रूप देह की आत्मा श्रीकृष्ण हैं।

व्याख्या - प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि शरीर पृथक् है एवं शरीरी (आत्मा) पृथक् है। मृत्यु के बाद सब कहते भी हैं कि आज रामदत्त चला गया, उसकी मिट्टी में जाना पड़ेगा। सुषुप्ति (प्रगाढ़ निद्रा) दशा में शरीरेन्द्रिय मन बुद्धि सब निष्क्रिय हो जाते हैं किंतु सोकर उठने पर सब यही कहते हैं कि - **'सुखमहमस्वाप्सम्'** मैं बड़े सुख से सोया।

इस प्रकार जीव एवं जीव का शरीर ये दो वस्तुयें हैं। शरीरेन्द्रियादि सब, जीव के दास हैं। क्योंकि उनका समस्त क्रिया कलाप जीव के सुख के लिये ही होता है। यह सबका अनुभव है। ठीक इसी प्रकार इस जीवात्मा की भी आत्मा, परमात्मा है। एवं जीवात्मा, उस परमात्मा का शरीर है।

यस्येदं शरीरं। (वेद)

यस्याक्षरं शरीरं। *(वेद)*

अतः जीवात्मा भी परमात्मा का नित्य दास है। यह बात और है कि माया के कारण जीव अपना वास्तविक स्वरूप भूल गया है एवं स्वयं को देह मानकर माया की ही दासता कर रहा है और अनादिकाल से दुःखी हो रहा है।

यदि रसिक कृपा से उपर्युक्त स्वस्वरूप ज्ञान हो जाय तो अपने स्वामी श्रीकृष्ण से मिलने एवं उनकी सेवा प्राप्त करने को परम व्याकुल हो जाय और व्याकुलता से ही वे मिल भी जायँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्य अहिंसा आदि मन! बिन हरिभजन न पाय।
जल ते घृत निकले नहीं, कोटिन करिय उपाय॥ ३५॥

भावार्थ – सत्य, अहिंसादि दैवीगुण केवल श्रीकृष्ण भक्ति से ही मिल सकते हैं। जैसे पानी मथने से घी नहीं निकल सकता। ऐसे ही अन्य करोड़ों उपायों से भी दैवीगुण नहीं मिलते।

व्याख्या – सत्य बोलना आदि दैवी गुण हैं। सभी व्यक्ति इन गुणों से प्यार भी करते हैं। क्योंकि दैवी गुणों के अध्यक्ष श्रीकृष्ण के अंश हैं। हम दूसरों से जो चाहते हैं वही हमारा स्वभाव है। किसी के झूठ बोलने आदि पर हम एतराज़ करते हैं, भले ही स्वयं दिन में सैकड़ों झूठ बोलते हों। इससे सिद्ध हुआ कि दैवी गुण सत्य, अहिंसादि भगवान् से ही सन्बन्ध रखते हैं एवं इसके विपरीत झूठ, हिंसादि, माया से सम्बन्ध रखते हैं। इसी से मायिक वस्तुओं के लोभ में हम लोग झूठ आदि का अवलंब लेते हैं।

अतः जब तक भगवान् की भक्ति न की जायगी तब तक अंतःकरण शुद्ध ही न होगा। बिना अन्तःकरण शुद्ध हुये हम सत्य आदि दैवीगुणों का प्रदर्शन मात्र कर सकते हैं किंतु वास्तव में दैवीगुण युक्त नहीं हो सकते। केवल मन से सोचने मात्र से हमारा मन शुद्ध न होगा। हाँ – यह हो सकता है कि बार-बार सोचने से, परलोक के भय से कुछ मात्रा में बहिरंग रूप से इन गुणों का दिखावा कर लें।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन माया ते ही बन्यो, माया ते संसार।
याते मन भावत सदा, यह संसार असार॥ ३६॥

भावार्थ - मन का निर्माण माया से हुआ है। तथा प्राकृत संसार तो माया का प्रत्यक्ष ही है। अतः मन को संसार प्रिय है।

व्याख्या - वेद कहता है कि -

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।

(कठोप. २-१-१)

अर्थात् इन्द्रिय मन आदि बहिर्मुखी बनाई गई हैं। क्योंकि मन एवं जगत् दोनों मायिक होने से सजातीय हैं। यद्यपि माया भी जड़ है। अंतःकरण भी जड़ है। किंतु जैसे माया अपने स्वामी श्रीकृष्ण की चैतन्य शक्ति द्वारा कार्य करती है। वैसे ही मन भी अपने स्वामी जीव की चैतन्य शक्ति द्वारा कार्य करता है। इसी से मन को वश में करना असम्भव सा है अर्जुन सरीखा गांडीवधारी भी कहता है। यथा-

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

(गीता ६-३४)

अर्थात् मन का वेग वायु से भी तीव्र है। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने भी माना यथा-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

(गीता ६-३५)

इस मन का निग्रह हो ही नहीं सकता। यह एक क्षण को भी अकर्मा नहीं रह सकता। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(गीता ३-५, भाग. ६-१-५३)

अतः इस चंचल मन को चंचल से भी चंचल श्रीकृष्ण में लगा देना ही निग्रह समझना चाहिये। अन्यथा तो बड़े-बड़े योगीन्द्र जितेन्द्रिय भी मन से हार चुके हैं। यथा - भागवत् -

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगम् ।

(भाग. १०-८७-३३)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

कोउ कह तजु सब काम कोउ, कह भजु सुंदर श्याम।
हौं कह दोउ इक संग करु, तब हो पूरन काम॥ ३७॥

भावार्थ - कोई कहता है कि कामनाओं को छोड़ दो। एवं कोई कहता है कि केवल श्याम भजन करो। मेरी राय में दोनों भोले हैं। अतः कामना त्याग एवं हरि अनुराग साथ-साथ करना है।

व्याख्या - शास्त्रों में कहा है कि कामनाओं को छोड़ देने से ही लक्ष्य प्राप्त हो जायगा। यथा वेद -

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठोप. २-३-१४)

शास्त्रों में यह भी कहा है कि श्रीकृष्ण भक्ति ही करो। यथा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेद-

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं पश्यति भक्तिरेवैनं दर्शयति।
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।

(माठरश्रुति, सुबालोप.)

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेता. ६-२३)

वेदव्यास -

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः।

(स्कन्द पु., महाभारत)

तथ्य यह है कि बिना परमानन्द प्राप्ति हुये कामनायें जा ही नहीं सकतीं। अतः दोनों साधनायें एक साथ करनी होंगी। यथा -

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

(गीता ६-३५)

अर्थात् संसारी कामनाओं के स्थान पर ईश्वरीय कामनायें बनाने का अभ्यास करना है। यही एकमात्र उपाय है। प्रथम संसार से मन को हटाओ (क्योंकि वहाँ आत्मा का सुख नहीं है) फिर श्रीकृष्ण में लगाओ (क्योंकि वहाँ सुख ही है) इस प्रकार बार-बार हटाने एवं लगाने से कुछ काल पश्चात् मन लगने लगेगा। जितना लगने लगेगा, उतना हटने लगेगा।

संसारी कामनायें आत्म-सुख के लिये ही तो हैं जब यह ज्ञान परिपक्व हो जायगा तो लक्ष्य प्राप्त हो जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम क्रोध मद लोभ कहं, मन मूरख! मत छोड़।
रसिक शिरोमणि श्याम ढिग, दे इन को मुख मोड़॥ ३८॥

भावार्थ – हे मूर्ख मन! तू काम क्रोधादि को छोड़ने की मत सोच। वरन् इनको श्यामसुन्दर सम्बन्धी बना दे।

व्याख्या – प्राय: लोग कहते हैं कि क्रोध छोड़ो, लोभ छोड़ो इत्यादि। किंतु यह नहीं बताते कि छोड़ें कैसे ? जब हम मायाधीन हैं तो इन दोषों का छोड़ना साधारण जनों की तो क्या बड़े-बड़े योगीश्वरों के वश की बात भी नहीं है। माया के जाने पर ही ये मायिक दोष जा सकते हैं। हाँ-प्रयत्न करने से कुछ दब सकते हैं। इनका परस्पर सम्बन्ध है। यथा –

संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ *(गीता २-६२)*

अर्थात् आसक्ति से कामना पैदा होती है। उसकी पूर्ति में लोभ एवं अपूर्ति में क्रोध पैदा होता है।

अतः यदि मन की आसक्ति श्रीकृष्ण में ही की जाय तो श्रीकृष्ण मिलन की कामना पैदा होने लगे एवं कामना पूर्ति पर लोभादि भी आने लगें। आप कहेंगे कि यह तो रोग बना ही रहा। किंतु ऐसी बात नहीं है यथा –

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥
(भाग. १०-२२-२६)

अर्थात् श्रीकृष्ण सन्बन्धी कामादि परमानन्द प्रदान करते हैं। अतः जगत्सम्बन्धी काम, क्रोध लोभ निन्दनीय हैं। किंतु श्रीकृष्ण सम्बन्धी काम, क्रोध तो दिव्य बन जाते हैं। अतः परम वन्दनीय हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा -

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येते वांछंति भगवत्प्रिया:॥

(गौतमीय तंत्र, भ.र.सिं.)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सब साधन संपन्न कहँ, पूछत सब संसार।
साधनहीन प्रपन्न कहँ, पूछत नंदकुमार॥ ३९॥

भावार्थ - संसारी लोग उसी से प्यार करते हैं, जिसके पास संसारी वैभव होता है। किंतु श्यामसुन्दर अकिंचन से प्यार करते हैं।

व्याख्या - मायाधीन जीव परमानन्द से वंचित है। अत: उसी की प्राप्ति के हेतु भ्रमवश मायिक विषयों को चाहता है। यह स्वार्थ तब तक रहेगा, जब तक प्रेमानन्द नहीं प्राप्त कर लेता। अत: कोई भी माता, पिता, भ्राता, भर्ता ऐसा नहीं हो सकता जो दूसरे के सुख के लिये कुछ करे। यथा वेद कहता है-

न वा अरे पत्यु: कामाय पति: प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पति: प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्रा: प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्रा: प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। न वा अरे पशूनां कामाय पशव: प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशव: प्रिया भवन्ति। न वा अरे ब्रह्मण: कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति....। न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी। *(बृहदा. ४-५-६)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ भी संसारी स्वार्थ पूर्ति होती है वहीं प्यार करता है। स्वार्थ समाप्त, तो प्यार भी समाप्त। अतः धनादि वैभव की प्राप्ति द्वारा आनन्द प्राप्ति मानने वाले अज्ञानी व्यक्ति, वैभव वालों की चम्चागीरी करते रहते हैं। किंतु उस सेठ के दिवालिया होते ही ऐसे रफूचक्कर हो जाते हैं, जैसे वृक्ष के फल समाप्त होते ही पक्षीगण उड़ जाते हैं। किंतु भगवान् तो परिपूर्ण हैं। आत्माराम हैं। साथ ही अकारण करुण भी हैं। अतः जो जीव उनकी शरण में जाता है, वह सदा को आनन्दमय हो जाता है। किंतु वैभवयुक्त व्यक्ति जा ही नहीं सकता। वैभव का मद उसे स्वयं भगवान् बना देता है। इसी से कुंती ने संसार का अभाव वरदान स्वरूप माँगा था। अतः वैभवों से दूर रहना चाहिये।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

'मैं' 'मेरा', दोनों बहे, ज्ञानिन ज्ञान मझार।
'मैं' 'मेरा', दोनों रहे, प्रेमिन के दरबार॥ ४०॥

भावार्थ - ज्ञानमार्ग में 'मैं' एवं 'मेरा', को मिटा देना ही अभीष्ट है। किंतु भक्ति-मार्ग में 'मैं' एवं 'मेरा' हठात् सदा-सदा को बनाये रखना लक्ष्य है। (मैं दास, मेरा स्वामी श्रीकृष्ण)।

व्याख्या - ज्ञानी ब्रह्म से ऐक्य चाहता है। अतः वह मैं एवं मेरा नहीं रहने देना चाहता। अपने अंतःकरण को ही समाप्त करना लक्ष्य रखता है। अतः पहले तो ध्याता ध्येय ध्यान यह त्रिपुटी रहती है। पश्चात् एकत्व हो जाता है। किंतु भक्त दिव्य द्वैत प्रेमानन्द चाहता है। अतः कभी यदि मन प्रेम में निर्विकल्प भी हो जाता है, तो भक्त को बुरा लगता है वह यह भाव सदा बनाये रखता है मैं दास हूँ एवं मेरा स्वामी श्रीकृष्ण है। वस्तुतः भक्त अपने स्वामी की सेवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहता है अतः अद्वैत को दूर से नमस्कार करता है। एकत्व को तो भक्तों ने पिशाचिनी कहा है। भागवत कहती है। यथा –

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यार्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

(भाग. ११-१४-१४)

फिर एकत्व प्राप्ति का लक्ष्य इसीलिये तो ज्ञानी बनाता है कि संसारी द्वैत से तंग आ गये। किंतु दिव्य द्वैत के रस से वंचित हो जाता है। अतः हनुमान जी कहते हैं। यथा –

भवबंधच्छिदे तस्मै स्पृहयामि न मुक्तये।
भवान्प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥ *(वा. रा.)*

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

देश काल नहिं नियम कछु, नहिं कछु शिष्टाचार।
सरल हृदय नहिं छल कपट, प्रेमपंथ बलिहार॥ ४१॥

भावार्थ – मैं ऐसे प्रेममार्ग पर बलिहार जाता हूँ जिसमें न स्थान का बंधन है। न समय का बंधन है। न शिष्टाचार का। निष्कपट भाव से श्रीकृष्ण से निष्काम प्रेम करना है।

व्याख्या – ज्ञान, योग, कर्मादि मार्गों में बड़े-कड़े कड़े नियम हैं। पूर्व में बता चुके हैं। थोड़ी भी त्रुटि होने पर साधक का अनर्थ हो जाता है। किंतु प्रेममार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में कुछ भी नियम अपेक्षित नहीं है।

यथा –

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा।

(पद्म पुराण)

चाहे बाल्मीकि के समान भी पापी हो (राम नहीं कह सके) चाहे सर्वसाधनहीन दीन मलीन हो, सब के लिये यह दरबार सदा खुला है। उसी मंच पर अजामिल, गीध, गणिका भी बैठते हैं जिस मंच पर ब्रह्मा, शंकर, नारदादि बैठते हैं। ज्ञानी, योगी, कर्मी के तो भाग्य में ही प्रेमानन्द नहीं है। प्रेम मार्ग में तो केवल निष्कामता एवं अनन्यता का ही मात्र नियम है। शेष नियमों से भगवान् ने छूट दे दी है। किसी के आँख नहीं है। किसी के रसना नहीं है। किंतु मन तो सब के पास है। बस वही मन ही चाहते हैं श्यामसुन्दर।

प्रायः यह रहस्य न जानने के कारण अधिकांश उपासक मन को न देकर इन्द्रियों से उपासना करते हैं। ध्यान रहे–मन की भक्ति ही भक्ति मानी जायगी।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

'जिवु' 'माया', दुइ शक्ति हैं, शक्तिमान भगवान।
शक्तिहिं भेद अभेद भी, शक्तिमान ते जान॥ ४२॥

भावार्थ – जीव एवं माया ये दोनों भगवान् की शक्तियाँ हैं। शक्ति एवं शक्तिमान् में भेद माना गया है एवं अभेद भी माना गया है। अतः भगवान् से जीव एवं माया का भेदाभेद है।

व्याख्या – गीता में लिखा है। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७-४,५)

अर्थात् मेरी २ शक्तियाँ जीव एवं माया हैं। शक्ति एवं शक्तिमान् में भेद एवं अभेद दोनों माना गया है। अतः जब भेद माना जायगा तो ब्रह्म, जीव एवं माया तीनों को अनादि कहा जायगा। और जब अभेद माना जायगा तो एक ही शक्तिमान् भगवान् ही माना जायगा।

भेद वाचिनी वेदऋचायें -

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥

(श्वेता. १-१२)

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥

(श्वेता. १-१०)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

(श्वेता. ४-६)

ब्रह्म सनातन है अतः उसकी दोनों शक्तियाँ (जीव, माया) भी नित्य हैं यथा वेद -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

(श्वेता. ४-५)

इसी प्रकार जब शक्ति एवं शक्तिमान में अभेद माना जायगा तो –

'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' *(छान्दो. ६-२-१)*

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। *(ऋग्वेद)*

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्॥ *(श्वेता. ३-१५)*

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्॥ *(ईशा. १)*

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय। *(गीता ७-७)*

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ *(गीता ९-४)*

सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्। *(भाग. २-६-१५)*

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।
वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः॥ *(भाग. २-५-१४)*

अस्तु – शास्त्रों में दोनों प्रमाण प्राप्त हैं। दोनों ही सही हैं। निरर्थक विवाद में नहीं पड़ना चाहिये।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा बिच परमात्मा, करत निवास सदाय।
याते कहुँ कहुँ आत्मा, परमात्मा कहलाय॥ ४३॥

भावार्थ - प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा का नित्य निवास है। अतः वेदों शास्त्रों में यत्र-तत्र जीवात्मा को भी परमात्मा कह दिया गया है।

व्याख्या - वेद कहता है। यथा -

य आत्मनि तिष्ठति।
योऽक्षरे तिष्ठन्।

वेदान्त भी कहता है। यथा -

अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः। *(ब्र.सू. १-४-२२)*

अर्थात् परमात्मा सदा आत्मा में रहता है। आप कह सकते हैं कि परमात्मा तो अपने भक्तों के ही भीतर रहता है। सबके भीतर क्यों रहेगा? किंतु यदि परमात्मा, जीवों के भीतर न रहेगा तो जीव को चेतना कौन प्रदान करेगा? यथा वेद -

चेतनश्चेतनानाम्। *(श्वेता ६-१३)*

फिर अनन्त जन्मों के संचित कर्मों का कुछ अंश प्रारब्ध रूप में जीवों को भोगवाने के लिये भी रहना पड़ता है। इतना ही नहीं वरन् प्रत्येक ब्रह्मांड के प्रत्येक देश के प्रत्येक प्रांत के प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक कण-कण में स्थित प्रत्येक जीव के प्रत्येक संकल्प को नोट करने के लिये भी रहना अनिवार्य है।

सर्वाधिक प्रमुख कारण तो यह है कि भगवान् का एक संविधान है। यथा -

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। *(गीता ९-२२)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा. रा.)

अर्थात् जिस क्षण भी जीव मेरी शरण में आ जाता है उसी क्षण मुझे अनेकों कार्य एक साथ करने पड़ते हैं। यथा –

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः

(गीता १८-६६)

अर्थात् शरणागत होते ही अनन्त संचित पाप पुण्य समाप्त करना। कर्मों की जननी माया को समाप्त करना। पंचकोष भस्म करना। त्रिगुण, त्रिदोष, पंचक्लेश समाप्त करना। एवं सदा सदा को उसका योगक्षेम वहन करना आदि। अतः यदि जीवात्मा में रहते हुये सदा सावधान न रहेगा तो शरणागत होते ही जीवों के उपर्युक्त कार्यों को कैसे करेगा? यह भगवान् सदा से जीव के साथ है। अतः वेद –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते॥

(श्वेता. ४-६)

एक कारण और है। वह यह कि जीव की इन्द्रिय मन बुद्धि में तत्तत्कर्म करने की शक्ति भी भगवान् ही देता है। अन्यथा ये सब तो जड़ हैं। अतः वेदान्त-

परात्तु तच्छ्रुतेः। *(ब्र. सू. २-३-४१)*

एष ह्येव साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो उन्नीनिषते।
एष ह्येवा साधुकर्म कारयति तंयमधो निनीषते॥

(श्रुति)

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। *(गीता १८-६१)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंतु यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि भगवान् ही हमारे कर्मों का कर्ता है। भगवान् कर्म करने की शक्ति मात्र देता है किंतु कर्म करने का अधिकार जीवों को दे रखा है। तभी तो वेदादि का उपदेश सार्थक होगा। कर्मफलभोग सार्थक होगा। अतः भगवान् ऐसा ही समझना चाहिये, जैसा *पॉवर हाउस* का घर में *पॉवर* देना। किंतु उस बिजली के *पॉवर* का सदुपयोग या दुरुपयोग करना यह काम आप का है। यह ठीक है कि यदि भगवान् *(पॉवर हाउस)* शक्ति न देता तो हम कुछ साधन न कर पाते। अतः कर्ता जीव ही है। भोक्ता भी जीव ही है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

लखत रहत नित भक्ति मुख, कर्म, योग, अरु ज्ञान।
अति स्वतंत्र है भक्ति पथ, वेद पुरान बखान॥ ४४॥

भावार्थ - कर्म, योग, ज्ञानादि को भक्ति की अपेक्षा है। किंतु भक्ति को किसी की भी अपेक्षा नहीं है। भक्ति स्वतंत्र है।

व्याख्या - वेदों शास्त्रों एवं पुराणों ने बताया है कि कर्म वेदविहित होने पर भी स्वर्ग ही दे सकता है। जो कि नश्वर है। योग एवं ज्ञान भी केवल स्वस्वरूप का ही ज्ञान करा सकता है ब्रह्मज्ञान नहीं करा सकता। ब्रह्मज्ञान के लिये श्रीकृष्ण भक्ति परमावश्यक है। बिना भक्ति किये श्रीकृष्ण की कृपा ही न होगी, बिना कृपा के न माया निवृत्ति होगी, न तो ब्रह्मज्ञान ही होगा।

वस्तुतस्तु भक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। यथा -

निश्चला त्वयि भक्तिर्या सैव मुक्तिर्जनार्दन *(स्कन्द पुराण)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् श्रीकृष्ण भक्ति ही मुक्ति है। या मुक्तिदायिनी है। अस्तु भक्ति स्वतंत्र है। **भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी।** यथा –

सर्वाभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

(भ. र. सिं.)

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते॥

(नारद पांचरात्र)

'लोकवेदव्यापारन्यासः' *(ना. भ. सू. ८)*

'फल रूपत्वात्' *(ना. भ. सू. २६)*

भक्ति मुख निरीक्षक कर्मयोग ज्ञान *(चै. च.)*

सारांश यह है कि कर्म योग ज्ञान सब परतंत्र हैं। केवल भक्ति ही स्वतंत्र है। भगवान् भी भक्ति के परतंत्र है। अब भक्ति सम्बन्धी विशेष वैलक्षण्य पर विचार कर लीजिये।

१. भक्ति समस्त वेदों शास्त्रों में है। यथा –

भगवान् ब्रह्म कात्स्न्र्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥

(भाग. २-२-३४)

२. भक्ति समस्त कर्ताओं में है। यथा –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९-३२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. भक्ति सदाचारी तो करता ही है, किंतु दुराचारी को भी अधिकार है यथा –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्वयवसितो हि सः॥

(गीता ९-३०)

४. भक्ति अज्ञानी एवं ज्ञानी दोनों के लिये समान है। यथा –

ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः॥

(भाग. ११-११-३३)

५. आसक्त एवं विरक्त दोनों को भक्ति करनी है। यथा आसक्त –

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः।
प्रायः प्रगलभ्या भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते॥

(भाग. ११-१४-१८)

विरक्त तो भक्ति करता ही है।

६. मुमुक्षु एवं मुक्ति प्राप्त परमहंस दोनों के लिये भक्ति है। यथा मुमुक्षु –

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥

(भाग. १-२-२६)

यथा – आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(भाग. १-७-१०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. साधक एवं सिद्ध दोनों के लिये भक्ति समान है। साधक यथा-

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारमिव भास्करः॥

(भाग. ६-१-१५)

सिद्ध को तो भक्ति करनी ही है। क्योंकि -

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी॥
तरइ न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामि॥

८. सभी स्थानों में भक्ति यथा -

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा। (पद्म पुराण)

९. सभी इंद्रियों से भक्ति यथा -

बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्कांचनकंकणौ वा॥

वर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥

जीवञ्छवो भागवतांघ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्यामनुजस्तुलस्याःश्वसञ्छवो यस्तु न वेद गंधम्॥

तदश्मसारं हृदयं वतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

(भाग. २-३-२० से २४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. सभी द्रव्यों से भक्ति यथा –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९-२६, भाग. १०-८१-४)

११. समस्त क्रियाओं में भक्ति यथा –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९-२७)

१२. समस्त कार्यों में भक्ति यथा –

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत्कृतं तु मयादेव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

१३. समस्त कामनाओं में भक्ति यथा –

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(भाग. २-३-१०)

इस प्रकार भक्ति का अनन्त रूप से स्वातंत्र्य है। यह भक्ति समस्त ब्रह्माण्डों में रहती है। तथा दिव्य परव्योम एवं गोलोक में तो रहती है। अतः भक्ति महाप्रलय में भी दिव्य भगवद्धाम में सदा रहती है। यह भक्ति साधन भी है एवं साध्य भी है। यथा –

भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्।

(भाग. ११-३-३१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधन सिद्धि राम पग नेहू।

(रामायण)

साधन भक्ति द्वारा ही साध्य भक्ति प्राप्त होती है। यह भक्ति प्रमुख रूप से तीन प्रकार की होती है। यथा –

१. **सकाम भक्ति** – राजसी एवं तामसी भक्ति।

२. **कैवल्य कामा भक्ति** – सात्त्विकी भक्ति।

३. **निर्गुणा भक्ति** – यही भक्ति विशुद्ध एवं ग्राह्य है। इस भक्ति के ३ भेद और भी बताये गये हैं। यथा –

   १. आरोप सिद्धा भक्ति – जो किसी कामना से की जाय।

   २. संग सिद्धा भक्ति – जिसमें कर्म ज्ञानादि का मिश्रण हो।

   ३. स्वरूप सिद्धा भक्ति – जो सेवा भाव युक्त निष्काम हो।

सारांश यह कि केवल भक्ति ही स्वतंत्र है एवं अन्य मार्गावलंबियों को भी भक्ति की शरण ग्रहण करनी होगी।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ब्रह्मलोक पर्यंत सुख, अरु मुक्तिहुँ सुख त्याग।
तबै धरहु पग प्रेम पथ, नहिं लगि जैहैं दाग॥ ४५॥

भावार्थ – ब्रह्मलोक पर्यन्त के सुखों की कामना एवं पाँचों मुक्तियों की कामनाओं का त्याग करके ही विशुद्धा भक्ति सरोवर में अवगाहन करो। अन्यथा प्रेम के उज्ज्वल स्वरूप पर कामनाओं का काला धब्बा लग जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या - भक्ति शब्द का अर्थ ही है सेवा करना। (भज् सेवायां धातु से भक्ति शब्द बना है) सेवक को स्वामी की सेवा में अपने सुख की कोई भी कामना नहीं करनी है। सेवा का सच्चा स्वरूप ही है स्वामी को सुखी करना एवं उनके सुख में स्वयं सुखी रहना। सेवा सदा स्वामी की रुचि के अनुसार ही करनी है। मैंने पूर्व में विस्तार पूर्वक लिखा है। भुक्ति एवं मुक्ति इन दोनों कामनाओं के अन्तर्गत ही समस्त कामनायें हैं। अत: इनको तो छोड़ना ही है। साथ ही साथ अपने सुख की भी कामना छोड़नी है। यथा नारद जी कहते हैं-

'तत्सुख सुखित्वम्।' *(ना.भ.सू. २४)*

सारांश यह कि हम लोगों ने अनादि काल से अपनी संसारी या मुक्ति सम्बन्धी कामनायें बनाकर अपना वास्तविक स्वरूप भुला दिया है। लेना लेना ही सीखा है। अर्थात् स्वार्थयुक्त प्रेम ही किया है। अब देना देना सीखना है। यह सिद्धांत दृढ़ हो जाने पर भक्ति अत्यंत सुलभ हो जायगी।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सेवक सेवा ही चहइ, सेव्य श्याम रुचि जान।
तिन सुख महँ रह सुखी नित, उर न कामना आन॥ ४६॥

भावार्थ - वास्तविक सेवक अपने स्वामी श्यामसुंदर की सेवा ही चाहता है। वह सेवा भी सेव्य की रुचि में रुचि रखकर होनी चाहिये। एवं स्वामी के सुख में ही सुख मानना चाहिये। अपने सुख की कामना विष है।

व्याख्या - विशुद्ध भक्ति का वास्तविक स्वरूप ही होता है निष्कामता। निष्कामता का अभिप्राय है कि हम पाँच प्रकार की मुक्ति भी न चाहें। मुक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की कामना भी तो सकामता ही है। निष्कामता का स्वरूप इतना मधुर होता है कि अनन्त ब्रह्मानन्द फीका पड़ जाता है।

यथा –

गोविंद प्रेक्षणाक्षेपि वाष्पपूराभिवर्षिणम्।
उच्चैरनिंददानन्दमरविन्दविलोचना॥

(भ. र. सि.)

अर्थात् एक गोपी श्यामसुन्दर के अनन्त सौंदर्य रसपान में इतनी मुग्ध हो गई कि आँखों में आनन्द के अश्रु आ गये। वह गोपी अपने आनन्द के आंसुओं की निंदा करती है। क्योंकि यह भी स्वार्थ है। सेवा में बाधा पड़ जायगी। इसी प्रकार द्वारिका में (द्वारिका धाम ऐश्वर्य मिश्र माधुर्य का है) एक बार दारुक पंखा कर रहे थे। द्वारिकाधीश के दर्शन से सात्त्विक भावों का उद्रेक हो गया। इससे पंखा झलने में बाधा पड़ गई। जब ध्यान आया, तब दारुक ने सात्त्विक भावों को बहुत धिक्कारा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ज्ञान बिना हो भक्ति पै, भक्ति बिना नहीं ज्ञान।
भगति बिना हो ज्ञान जो, लावत उर अभिमान॥ ४७॥

भावार्थ – भक्ति को ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है। किंतु ज्ञान को भक्ति की परमावश्यकता है, क्योंकि बिना भक्ति वाला ज्ञान, अभिमानवर्धक होता है। मोक्ष प्राप्ति की तो बात स्वप्नवत् है।

व्याख्या – ज्ञान अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें प्रमुख भौतिक ज्ञान एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आध्यात्मिक ज्ञान दो ही हैं। इन दोनों में भौतिकज्ञान का तो यहाँ विषय ही नहीं है। अध्यात्मज्ञान भी कई प्रकार का होता है। यथा एक शाब्दिक अध्यात्मज्ञान। दूसरा क्रियात्मक अध्यात्म ज्ञान। इनमें शाब्दिक ज्ञान तो वेदादि अध्ययन द्वारा (क्रियाहीन) होता है, जो शब्दाडंबर मात्र ही है। दूसरा क्रियात्मक या साधनात्मक ज्ञान होता है। इसमें वेदानुसार गुरु की शरणागति में रहकर साधना की जाती है। पूर्व में मैंने ८ प्रकार की साधना बताई है। किंतु यह ध्यान रहे कि इन ८ प्रकार की साधनाओं को अंतःकरण से ही करना है। शब्दों से नहीं। इस प्रकार सैकड़ों जन्म साधना करने पर यदि पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तो आत्मज्ञान मात्र प्राप्त होता है। यह आंशिक ब्रह्मज्ञान भी कहा जाता है। बस यहीं पर ज्ञान की साधना की इतिश्री हो गई। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण की भक्ति अनिवार्य है अन्यथा ब्रह्मज्ञान एवं उससे मोक्ष की प्राप्ति न हो सकेगी। किंतु भक्ति स्वतंत्र है। वह तो ज्ञान वैराग्य की जननी है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

बिनु हरि कृपा न जाति यह, माया अति बलवान।
ज्ञानिन ब्रह्म न कछु कर, पुनि किमि कर कल्यान॥ ४८॥

भावार्थ - बिना श्रीकृष्ण कृपा के माया नहीं समाप्त हो सकती, क्योंकि वह महाशक्ति है। यह श्रीकृष्ण कृपा, ज्ञानियों को भी अपेक्षित है, क्योंकि ज्ञानियों का ब्रह्म तो अकर्ता है।

व्याख्या - शास्त्रों का कथन है कि **'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्'**। ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। फिर ज्ञानियों को मोक्ष क्यों नहीं मिलता? जबकि ज्ञानियों का निर्गुण ब्रह्म भी श्रीकृष्ण का ही अभिन्न स्वरूप है। इसका उत्तर यह है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यपि ब्रह्म में भी समस्त शक्तियाँ हैं एवं वह श्रीकृष्ण का ही द्वितीय स्वरूप है। किंतु ब्रह्म स्वरूप में शक्तियों का विकास नहीं होता। अतः ब्रह्म सत्तामात्र है। (शंकर का ब्रह्म अवैदिक है क्योंकि वे ब्रह्म को निःशक्तिक मानते हैं।) जब ब्रह्म में शक्तियों के होते हुये भी शक्तियों का कार्य ही न होगा तो कृपा का गुण भी विकसित न होगा। तो वह कृपा भी नहीं कर सकेगा। अतः माया की निवृत्ति ही न होगी। बार-बार उस आत्मज्ञानी का पतन ही होगा।

गीता का अटल सिद्धांत है कि जो श्रीकृष्ण की शरण में आता है। उसी पर कृपा होती है। वही मुक्त होता है। यथा -

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

(गीता ७-१४)

अतः जिस ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। वह ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) भगवत्कृपा से ही प्राप्त होगा।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

बिनु हरि कृपा न पाइ सक, ज्ञानिहुँ ब्रह्मज्ञान।
ब्रह्म अकर्ता वेद कह, सोचहु मनहिँ सुजान॥ ४९॥

भावार्थ - बिना सगुण साकार भगवान् की कृपा के ज्ञानी को भी ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि ज्ञानियों का ब्रह्म कुछ नहीं करता। फिर कृपा करने का तो प्रश्न ही नहीं है।

व्याख्या - वेद कहता है -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम् । *(माण्डू. ७)*

पुनः-

निष्कलं निष्क्रियः शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।

(श्वेता. ६-१९)

अर्थात् ब्रह्म अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिंत्य एवं निर्गुण तथा अकर्ता है। मायानिवृत्ति अथवा ब्रह्मज्ञान केवल श्रीकृष्ण कृपा से ही प्राप्त होने का संविधान है। अतः अकर्ता ब्रह्म द्वारा कृपा न प्राप्त हो सकने के कारण ज्ञानी को सगुण साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करनी होगी। यद्यपि वह अपनी अत्यन्त क्लिष्ट साधना द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। एवं स्वरूपावरिका माया से उत्तीर्ण हो सकता है। '**अहं,** तत्त्व का भी भेदन कर सकता है। किंतु ब्रह्म ज्ञान, गुणावरिका माया का अत्यन्ताभाव तथा महान् एवं प्रकृति का भेदन, केवल श्रीकृष्ण की शरणागति द्वारा प्राप्त कृपा से ही होगा। पूर्व में विस्तार पूर्वक बता चुके हैं। पूर्ण ब्रह्मज्ञानी भी यदि कभी श्यामा श्याम की एक क्षणिक झलक भी पा लेता है, तो ब्रह्मानन्द भुला देता है। शुकदेव आदि प्रमाण हैं। अतः बुद्धिमान् लोग सोचें, समझें एवं श्रीकृष्ण भक्ति ही करें।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संत संग सत्संग करु, तिन सेवहु दिन रात।
श्रद्धा, रति, अरु भक्ति सब, आपुहिँ तेहि मिलि जात॥ ५०॥

भावार्थ – किसी वास्तविक रसिक की शरण ग्रहण कर, उनका सतत सत्संग करते रहने से श्रद्धा, रति एवं भक्ति क्रमशः स्वयं प्राप्त हो जाती है।

व्याख्या – जीव अनादि काल से भगवान् से विमुख है उसे भगवान् के सन्मुख होना है। तभी वह कृतार्थ हो सकता है। किंतु एतदर्थ सर्वप्रथम किसी वास्तविक गुरु की आवश्यकता है। चैतन्यदेव ने कहा –

भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु वैद्य पाय।
तार उपदेश मंत्रे पिशाची पलाय।
कृष्ण भक्ति पाय तवे कृष्ण-निकट जाय॥ *(गौ.महा.)*

गुरु के प्राप्त हो जाने पर भी तभी काम बनेगा, जब जीव का अंतःकरण श्रद्धा युक्त हो। यथा –

'आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
(भ. र. सिं.)

बस यहाँ आकर जीव की गाड़ी रुक जाती है। क्योंकि बिना वैराग्य के श्रद्धा उत्पन्न ही नहीं होती। ऐसे श्रद्धाहीन जीवों के लिये भी भगवान् ने कृपा द्वारा एक संविधान बनाया है। यथा –

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥
(भाग. ३-२५-२५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् वास्तविक गुरु की शरण में उनके द्वारा निःसृत श्रीकृष्ण तत्त्वज्ञान एवं गुणानुवाद के निरंतर श्रवण करते करते श्रद्धा उत्पन्न हो जायगी। फिर श्रीकृष्ण में रति होने लगेगी। फिर श्रीकृष्ण भक्ति भी स्वयं प्राप्त हो जायगी। अतः लक्ष्य प्राप्ति में गुरु ही प्रमुख कारण सिद्ध होता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ब्रह्म वृहत्वात् अस बड़ा, जाको आदि न अंत।
बड़ा बृंहणत्वात् अस, औरन करे अनंत॥ ५१॥

भावार्थ - ब्रह्म शब्द के दो अर्थ होते हैं। १- वृहत्वात् ब्रह्म। अर्थात् जो सब प्रकार से अनन्त मात्रा का बड़ा हो। २- बृंहणत्वात् ब्रह्म। अर्थात् जो अन्य जीवों को भी अनन्त कर दे।

व्याख्या - परात्पर तत्त्व के लिये वेदों में बार-बार ब्रह्म शब्द का प्रयोग आया है। अतः ब्रह्म शब्द के अर्थ पर विचार करना है। वेदों में ही ब्रह्म शब्द का अर्थ भी लिख दिया गया है। यथा -

वृहति वृंहयति इति तत्परं ब्रह्म।

(वि. पु. १-१२-५५)

विष्णु पुराण में भी ब्रह्म शब्द का अर्थ लिखा है। यथा -

बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च यद्रूपं ब्रह्मसंज्ञितम्।

सारांश यह कि ब्रह्म शब्द के २ ही अर्थ हैं। १- जो अनन्त मात्रा का बड़ा हो। २- जो दूसरों को भी अपने समान ही बड़ा कर दे। वेद ने ब्रह्म को अनन्त कहा है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। *(तैत्ति. २-१)*

पुनः वेदों ने ही कहा है कि ब्रह्म की अनन्त शक्तियाँ भी हैं। यथा-

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। *(श्वेता ६-८)*

उन्हीं स्वाभाविक शक्तियों के द्वारा ब्रह्म दूसरों को भी बड़ा करता है। ब्रह्म स्वयं भी उन्हीं शक्तियों के द्वारा सर्वज्ञादि गुणों से युक्त रहता है। यथा

'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।' *(मुण्डको. २-२-७)*

अतः ब्रह्म सशक्तिक ही है। कुछ भोले भाले अद्वैती ब्रह्म को निःशक्तिक ही मानते हैं। जब कि वेद स्पष्ट कह रहा है कि -

'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥ *(श्वेता. ६-८)*

पुनः

'तस्यशक्तयस्त्वनेकधा ह्लादिनी संधिनी ज्ञानेच्छा क्रियाद्या, तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमांतरंगभूता राधा कृष्णेन आराध्यते इति राधा।
(ऋग्वेदीय श्रीराधिकोपनिषद्)

कुछ भोले अद्वैती ब्रह्म को केवल निर्गुण निर्विशेष निराकार ही मानते हैं। उनसे पूछो कि यदि ऐसा ही होता तो वेद निम्न वचन क्यों कहते? यथा -

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः। *(मुण्डको. १-१-९)*

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
(श्वेता. ६-८)

एष आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। *(छान्दो. ८-१-५)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त वेद मंत्रों में ब्रह्म सगुण सविशेष बताया गया है। इसका कोई आप्त प्रमाण न देकर मनगढ़ंत उत्तर दिया है कि –

'निर्गुण वाक्यानां सगुणापेक्षत्वेन परत्वाद्बलीयस्त्वम्'

अर्थात् निर्गुण वचन, सगुण वचनों के बाद में आये हैं। अतः वे ही मान्य हैं कदाचित् उनके मत में वेद भी तोता मैना की पुस्तक जैसी है। वेद कहता है–

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति। *(कठोप. १-२-१५)*

पुनः भाष्यकार भी कहते हैं –

वेदे मात्रा मात्रस्याप्यानर्थक्यं न वक्तुं शक्यम्।

अर्थात् वेद भगवत्स्वरूप अपौरुषेय अनादि हैं। अतः किसी मंत्र के किसी शब्द के किसी अक्षर की मात्रा भी निरर्थक या अप्रामाणिक कहना अपराध है। अच्छा चलो, यदि हम उन की मान भी लें कि पूर्व से पर मान्य है। तो

'एष आत्मापहतपाप्मा विजरो'। *(छान्दो. ८-१-५)*

इस मंत्र में तो पूर्व में निर्गुण कहा है किंतु पर में **'सत्यकामः सत्य संकल्पः,** कहा है। फिर वे अद्वैती पर को मान कर सगुण सविशेष को क्यों नहीं मानते ? इसके विपरीत –

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

(श्वेता. ५-९)

इस वेदमंत्र में पूर्व को न मानकर पर को ही पारमार्थिक माना है। वे अद्वैती आत्मा को ज्ञानमात्र मानते हैं। ज्ञाता 'मैं', नहीं मानते। जरा सोचिये, यदि मैं ही नहीं हूँ (आत्मा) तो साधना ही क्यों करूँ ? किसके लिये करूँ ? क्या पाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये साधना करूँ ? फिर जब 'मैं' की ही सत्ता नहीं है तो ज्ञान की सत्ता किस पर आधारित है ? जैसे कोई कहे कि प्रयाग मे वृक्ष नहीं हैं। एवं वृक्ष काटने वाला भी नहीं है। तो फिर काटना कार्य कैसे होगा ? फिर वेद तो स्पष्ट कह रहा है कि

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' *(बृहदा. ४-५-१५)*

अर्थात ब्रह्म को ज्ञाता बता रहा है एवं यह भी कह रहा है कि उस ब्रह्म को कोई नहीं जान सकता (अद्वैती आत्मा को ही ब्रह्म मानता है)। फिर ब्रह्म सूत्र भी कहता है यथा -

'ज्ञोऽत एव' *(ब्र.सू. २-३-१८)*

अर्थात् आत्मा या ब्रह्म ज्ञाता है। केवल ज्ञान नहीं है। यह ब्रह्मसूत्र शंकराचार्य के गुरु गोविंदाचार्य के गुरु गौड़पादाचार्य के गुरु शुकदेव के गुरु वेदव्यास रचित हैं। साथ ही उन्हीं वेदव्यास को शंकर ने नारायण कहा है। यथा -

कापि च कृष्णायन्ती कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः।
अपिबत् स्तनमिति साक्षात् व्यासो नारायणः प्राह।

(शंकराचार्य)

जैसे दीपक प्रभा भी है एवं प्रभावान् भी है। ऐसे ही आत्मा ज्ञाता भी है। एवं ज्ञान स्वरूप भी है। इसी से वेदों ने कहा यथा -

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मंता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥ *(प्रश्नो. ४-९)*

अर्थात् वह देखता, सुनता, रस लेता, सूंघता, सोचता एवं ज्ञाता है। पुनः वेद कहता है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ।'

(छान्दो. ८-१२-४)

अत: विस्तार करने का अवसर नहीं है। इतने में ही समझ लो कि आत्मा (ब्रह्म) ज्ञाता है। केवल प्रकाशमात्र नहीं है। सच तो यह है कि ज्ञाता के बिना ज्ञान रह ही नहीं सकता।

कुछ अद्वैती कहते हैं कि अहंकार ज्ञाता है। ब्रह्म नहीं। किंतु अहंकार तो जड़ तत्त्व है। फिर वे कहते हैं कि आत्मा की छाया पड़ने से अहंकार ज्ञाता बन गया। किंतु यह कौन सी आत्मा है जिसकी छाया पड़ने से अहंकार ज्ञाता बना। तुम तो आत्मा को ज्ञाता ही नहीं मानते। आत्मा जब ज्ञाता ही नहीं है तो उसकी छाया ने अहंकार को कैसे ज्ञाता बना दिया? और यदि कहो कि अहंकार की छाया से आत्मा ज्ञाता बन गया तो अहंकार के जड़ होने के कारण छाया पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर आत्मा एवं अहंकार दोनों निराकार हैं एवं परोक्ष हैं। फिर छाया का प्रश्न कैसे पैदा हो जायगा।

शांतांगार इवादित्यमहंकारो जड़ात्मक:
स्वयं ज्योतिषमात्मानं व्यनक्तीति न युक्तिमत्।

अर्थात् यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई कहे कि बुझे कोयले ने प्रकाशक सूर्य को प्रकाश दिया है। जड़ अहंकार ने स्वयं ज्योति स्वरूप आत्मा को प्रकाशित किया है। (हंसी) – फिर जब आत्मा भी ज्ञाता नहीं, अहंकार भी ज्ञाता नहीं। तो जड़ अहंकार ने स्वयं प्रकाश्य आत्मा को ज्ञाता कैसे बना दिया? या ज्ञान स्वरूप आत्मा ने अहंकार को ज्ञाता कैसे बना दिया? फिर आत्मा एवं अहंकार में स्वाभाविक विरोध भी है। आत्मा स्वयं प्रकाश्य है, जबकि अहंकार जड़ तत्त्व है। अत: व्यंजक व्यंग भाव वाले भी नहीं हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते। फिर सुषुप्ति में तो अहंकार नहीं रहता, किंतु सोकर उठने पर **'सुखमहमस्वाप्सम्'** मैं सुख से सोया, यह स्मरण भी रहता है। इतना ही नहीं, वरन् सोने से पूर्व का भी स्मरण रहता है।

फिर मैं तो मोक्ष में भी नष्ट नहीं होता। यथा –

वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्यश्च।

यह ठीक है कि मायिक मैं (अहंकार) त्याज्य है। एक बात बताओ – यदि आत्मा ज्ञान नहीं है तो देहादि में सबको ज्ञाता की प्रतीति क्यों होती है? वे अद्वैती तो यहाँ तक कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान हो जाने के पश्चात् वेद भी मिथ्या है। जरा सोचिये–यदि वेद मिथ्या हैं तो वेदों में सत्यता की बुद्धि भी मिथ्या होगी। एवं इस मिथ्या ज्ञान का विषय ब्रह्म भी मिथ्या सिद्ध होगा।

वास्तव में वेदों में निर्दिष्ट अभेदवादिनी ऋचाओं का विशिष्ट अर्थ है। यथा –

'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' *(छान्दो. ६-२-१)*

अर्थात् ब्रह्म के समान दूसरा नहीं है। जो है वह भी ब्रह्म का ही है। एवं ब्रह्म बिना किसी के सहयोग के ही सृष्टि करता है। और यथा –

'निर्गुणं निरंजनं निष्कलं'

आदि, जो कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्म में प्राकृत गुण विकार नहीं है। यदि ब्रह्म को केवल निर्विशेष ज्ञान मात्र मानोगे तो –

'सईक्षत', 'तदैक्षत' स ईक्षांचक्रे', 'यःसर्वज्ञः',

'नित्योनित्यानाम्', 'ज्ञाज्ञौ द्वावजा', 'तमीश्वराणाम्',

'न तस्य कार्यं' 'परास्यशक्तिः', 'एष आत्मापहत'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यादि वेदमंत्रों का क्या होगा ? सोचो–ये सब मंत्र तो ब्रह्म को ज्ञाता ही मान रहे हैं।

वास्तव में ब्रह्म २ विरोधी धर्मों का अधिष्ठान है। यथा –

अणोरणीयान् महतो महीयान्। *(श्वेता. ३–२०)*

अन्यत्रधर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद॥ *(कठो. १–२–१४)*

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
(मुण्डको. ३–१–७)

यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् *(श्वेता. ३–९)*

नेति नेत्यस्थूलमनणुः *(वेद)*

भागवत में बड़ा सुंदर विरोधाभास वर्णन है। यथा –

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम्।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह॥
(भाग. ३–४–१६)

अर्थात् ब्रह्म इच्छा रहित है किंतु कर्म करता है। ब्रह्म अजन्मा है किंतु दाशरथि एवं वासुदेव बन कर जन्म लेता है। भगवान् कालात्मा है यथा –

भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥
(कठोप. २–३–३)

किन्तु जरासंध के भय से भागकर द्वारिका में छुप जाता है, भगवान् आत्माराम है किंतु गोपियों के साथ रास करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारांश यह कि ब्रह्म निर्गुण भी है, सगुण भी है। निर्विशेष भी है, सविशेष भी है। निराकार भी है, साकार भी है। अकर्ता भी है, कर्ता भी है। विश्व भी है, विश्व से परे भी है। अजन्मा भी है, जन्म भी लेता है।

त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः॥

(भाग. १०-३-१९)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ब्रह्म एक मधु रूप है, एक भ्रमर उनमान।
एक रूप रस देत है, एक आपु कर पान॥ ५२॥

भावार्थ – रस रूप ब्रह्म के २ स्वरूप होते हैं। एक रस रूप। दूसरा रसिक रूप। अर्थात् एक मधु के समान। दूसरा भौंरे के समान। एक रूप से स्वयं रस पान करते हैं। दूसरे रूप से जीवों को भी वही रस पान कराते हैं।

व्याख्या – वेद कहता है। यथा –

रसो वै सः। रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

(तैत्तिरीयो. २-७)

यह रस रूप ब्रह्म २ अर्थ वाला है।

१- **रस्यते इति रसः २-रसयति इति रसः।**

१- जिसका आस्वादन किया जाय। जैसे मधु।

२- जो रस का आस्वादन करता है। जैसे भ्रमर।

रस शास्त्र में विशेष उत्कर्ष ज्ञापक अर्थ में ही रस शब्द का प्रयोग हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष विलक्षण चमत्कारित्व को ही रस का प्राण माना है। चमत्कारित्व का स्वरूप यह है कि रस का आस्वादन करने में बहिरंग (हाथ पैर आदि) एवं अंतरंग (मनबुद्धि) इन्द्रियाँ दोनों का कार्य स्तंभित हो जाय। दूसरे विषय में ज्ञान-रहित हो जाय। वही रस है।

अतः जिस वस्तु में नित नवायमान रस का अनुभव हो। तथा जिसके अनुभव में प्रतिक्षण ऐसा लगे कि ऐसा अपूर्व माधुर्य इसके पूर्व कभी अनुभव में नहीं आया। तथा उस रस से कभी मन न भरे। प्रतिक्षण प्यास बढ़ती जाय। यह आस्वाद्य रस है यथा -

आली रस की रीति निराली प्याली भरे न खाली होय।

यह ब्रह्म रस रूप में आस्वाद्य एवं आस्वादक दोनों है। पूर्व में बता चुके हैं कि ब्रह्म में अनन्त स्वाभाविक शक्तियाँ होती हैं। अतः स्वाभाविक शक्तियों से युक्त आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द विशेष्य है एवं शक्ति विशेषण है। विशेषण अपने विशेष्य को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। अर्थात् शक्ति रूपी विशेषण, आनन्द रूप विशेष्य को विशिष्टता प्रदान करने वाला है। ब्रह्म का आनन्द चेतन है। जगत् के आनन्द के समान जड़ एवं क्षणिक नहीं है।

जिस रस का आस्वादन स्वयं श्रीकृष्ण करते हैं उसे स्वरूपानन्द कहा जाता है। सारांश यह कि श्रीकृष्ण, अपनी स्वरूप शक्ति के द्वारा अपने माधुर्य रस का भोग करते हैं।

जिसमें भक्तों द्वारा विशेष माधुर्य का आस्वादन करते हैं। उसे स्वरूप शक्त्यानन्द कहा जाता है। स्वरूप शक्त्यानन्द (भक्तों द्वारा प्राप्त माधुर्य रस) भी दो प्रकार का होता है। यथा- १ - ऐश्वर्यानन्द- इसमें ऐश्वर्य रस प्रधान है। माधुर्य गौण है। २- मानसानन्द - इसमें माधुर्य ही माधुर्य ओतप्रोत है। इनमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरूपानन्द से सरस ऐश्वर्यानन्द (भक्तों द्वारा प्राप्त) एवं उससे भी सरस मानसानन्द है। यही ब्रजरस कहा जाता है। यही सर्वश्रेष्ठ है।

ऐश्वर्य शिथिल प्रेमे नहे मोर प्रीत। *(चै.)*

ब्रजरस में ऐश्वर्य गुप्त रूप से ही सेवा करता है। प्रत्यक्ष नहीं आता है। यह ब्रजलीला नर लीला कहलाती है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

करन चहत आलिंगन, आपुहिं आपु निहार।
जन-मन-मोहन ही नहीं, निज मन-मोहन हार॥ ५३ ॥

भावार्थ - श्रीकृष्ण का माधुर्य रस इतना विलक्षण है कि श्रीकृष्ण स्वयं अपने आप को देखकर मुग्ध हो जाते हैं एवं अपना ही आलिंगन करना चाहते हैं। अतः वे निज जन के ही मनमोहन नहीं हैं, वरन् अपने मन के भी मोहन हैं।

व्याख्या - श्रीकृष्ण का रूप माधुर्य इतना मधुर है कि उसे देखकर ब्रह्मादिक तो मोहित होते ही हैं, किंतु आश्चर्य यह है कि स्वयं विश्वविमोहन मोहन भी मोहित हो जाते हैं। यथा -

यस्य प्रेक्ष्य स्वरूप तां ब्रज वधू सारूप्य मन्विच्छति।

अर्थात् एक बार मथुरा में गंधर्वों ने श्रीकृष्ण का रूप धारण कर अभिनय किया था। उस समय उनमें स्वरूप शक्ति का भी समावेश था। उस रूप माधुर्य को पान कर श्रीकृष्ण विभोर होकर यह कामना करने लगे कि काश कि मैं ब्रजगोपी बनकर इस रस का पान करता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भागवत में कहा है। यथा -

विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।

(भाग. ३-२-१२)

अर्थात् श्रीकृष्ण अपने ही प्रतिबिंब को देखकर अपने ही रूप माधुर्य पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। बाल्यावस्था में -

रत्नस्थले जानुचरः कुमारः संक्रान्तमात्मीय मुखारविंदम्।
आदातु कामस्तदलाभखेदान्निरीक्ष्य धात्री वदनं रुरोद॥

(सूक्ति)

एक बार छोटे से कन्हैया घुटने के बल चल रहे थे। चलते-चलते अचानक उनकी दृष्टि नीचे मणिओं के स्थल पर पड़ी। उसमें कन्हैया को अपना प्रतिबिंब दिखाई पड़ा। उस रूप के प्रतिबिंब को देखकर ऐसे मुग्ध हुये कि सब कुछ भूलकर (मैया का दूध पीने जा रहे थे) उस प्रतिबिंब के ही आलिंगन का प्रयत्न करने लगे। बार-बार प्रयत्न करने पर भी जब सफल नहीं हुये अर्थात् आलिंगन नहीं मिला। तो मैया यशोदा की ओर देखकर रोने लगे। तात्पर्य यह कि मैया! तू ही कुछ ऐसा उपाय कर कि मैं इस रूप का आलिंगन पा सकूँ। मैया अपने लाला के इस भोलेपन पर बलिहार गई और गोद में लेकर दुग्ध पान कराने लगी।

एक बार बड़े हो जाने पर द्वारिका में भी ऐसा ही हुआ। मणिओं की दीवार पर द्वारिकाधीश ने अपनी परछाई देखी बस-मुग्ध हो गये। और मन ही मन श्रीकृष्ण, श्री राधा बनने की कामना करने लगे। क्योंकि श्रीकृष्ण के रूप माधुर्य का सम्यक् आस्वादन वृषभानुनंदिनी राधिका ही करती हैं।

एक बार पुनः खेलते हुये नन्दललन को अपना प्रतिबिंब दिखाई पड़ा। बस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर क्या था – उसे चिपटाने के लिए बार-बार विशाल बाहों को फैलाने लगे। श्री राधा जी छुपकर यह दृश्य देख रहीं थी। और हँस रहीं थी कि अरे बुद्धू! तेरे भाग्य में यह रूपमाधुरी नहीं है यथा –

स्वच्छायामभिवीक्ष्य मुह्यति हरौ राधास्मितं पातु नः।

(गर्गसंहिता)

महाप्रभु गौरांग ने कहा –

रूप देखि आपनार कृष्णेर हय चमत्कार

आस्वादिते मने उठे काम

अर्थात् श्रीकृष्ण को अपने ही रूप माधुर्य को देख कर परमाश्चर्य हुआ एवं गोपी बन कर आस्वादन करने की कामना जाग्रत हो गई। किंतु यह कैसे संभव है।

श्री नयनाभिराम भगवान् राम का भी यही हाल है। यथा –

रूप राशि छवि अमित बिहारी, नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी।

सारांश यह कि यह तो सर्वविदित है कि श्रीकृष्ण का रूप माधुर्य ब्रह्मा शंकरादिकों को भी मोहित कर लेता है। स्वयं भगवान् शंकर ने गोपी बन कर उस रस का पान किया किंतु यह नई बात है कि वे सर्वविमोहन स्वयं भी अपने सौंदर्य माधुर्य में विभोर हो जाते हैं। इसी लक्ष्य से ही कृष्णावतार में २ रूप धारण करके आये थे। राधा कृष्ण। एक रूप में आस्वाद्य एवं एक रूप में आस्वादक भी थे।

कुछ भी हो किंतु राधा जी को श्रीकृष्ण माधुर्य रस के पान का सौभाग्य प्राप्त था। एवं श्रीकृष्ण को राधा रूप माधुर्य के रस के पान करने का सौभाग्य था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जबकि ब्रजांगनाओं को राधा कृष्ण दोनों के माधुर्य रस पान करने का अद्वितीय सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार सभी जीवों को प्राप्त हो सकता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

चितवत चित करषत जिते, चित समाधि महँ लाय।
औरन की का बात कह, शिव गोपी तनु पाय॥ ५४॥

भावार्थ – श्यामसुन्दर की एक रसमयी दृष्टि से बड़े-बड़े परमहंस समाधि भुला देते हैं। और परमहंसों की तो चर्चा ही क्या है – स्वयं भगवान् शंकर तक ने गोपी शरीर धारण किया।

व्याख्या – वैसे तो श्रीकृष्ण की प्रत्येक वस्तु ही श्रीकृष्ण स्वरूप है। अतः उनका एक रोम भी अनन्त माधुर्य से युक्त है। किंतु उन सब में उनका कटाक्ष (प्रेम भरी विलोकनि) सर्वाधिक सरस है। आत्माराम पूर्णकाम परमहंसों का मन मर जाता है। अतः वे द्वैत से निश्चिंत होकर निर्विकल्प होकर निर्विकल्प समाधि में लीन हो जाते हैं। किंतु उन परमहंसों के मरे हुये मन को पुनः जीवित करा कर, श्यामसुन्दर की चितवनि दास बना लेती है। यह सब स्वयं हो जाता है। परमहंसों को प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अन्य जीव कक्षा के परमहंसों की गिनती ही क्या है? स्वयं आशुतोष भूतभावन भगवान् शंकर को भी उसी चितवनि ने निर्विकल्प समाधि से निकालकर बंदी बना कर गोपी बना दिया। ब्रह्मादिक तो तरसते ही रहे।

एक भुक्तभोगी परमहंस कहता है। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मायातपांथाः पथिभीमरथ्या दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः।
विन्यस्तहस्तोऽपि नितंबबिंबे धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम्।।

(कृष्णकर्णामृत-परमहंस जगन्नाथदास)

अर्थात् हे पथिकों! इस मार्ग से कोई न जाना। क्योंकि मार्ग में एक नंगा शिशु जो तमाल वर्ण का है। कमर पर हाथ रखकर खड़ा है। उसकी एक चितवनि ने मुझ परमहंस (ब्रह्मानन्दी) को बरबस दास बना लिया। जब मुझ ब्रह्मानन्दी की यह दुर्दशा हो गई तो तुम लोगों का क्या होगा। उससे दूर ही रहो।

उनकी चितवनि की विलक्षणता का निरूपण कौन करे। उनके दर्शन के बिना ही केवल उनके गुणों में ऐसा कमाल है कि जन्मजात परमहंस शुकदेव एक श्लोक द्वारा गुणगान सुनकर ब्रह्मानन्द खो बैठे! एवं श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि से परे होकर भी पुनः गुणगान सुनने अपने पिता वेदव्यास के पास आये। भागवत सुना फिर उस भागवत को परीक्षित को सुनाया। और कहा। यथा -

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्॥

(भाग. १२-१३-१५)

अर्थात् अद्वैतादि समस्त वेदान्त सिद्धान्तों का सार यही है कि भागवत का रस पान किया जाय।

महारास में भगवान् शंकर केवल मुरली ध्वनि से समाधि भुलाकर भागे चले आये। जब गोपी ने रोक दिया तो श्री किशोरी जी की आज्ञा से गोपी बन कर ही आ सके। यह आश्चर्य नहीं है। क्योंकि परमहंस जिस समाधि में लीन होकर ब्रह्मानन्द का आस्वादन करता है। वह श्रीकृष्ण के ही शरीर का चिन्मय प्रकाश है। जब प्रकाश वाला मिल गया तो प्रकाश वाले के आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाश का मूल्य स्वयं समाप्त हो जाता है। यह सब अलौकिक बुद्धि से ही समझा जा सकता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सृष्टि पूर्व हरि देखत, सोचत मृदु मुसकात।
सगुण रूप साकार नित, वेद विदित विख्यात ॥ ५५ ॥

भावार्थ - कुछ भोले अद्वैती कहते हैं कि ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष निराकार ही है। सृष्टि के पश्चात् कुछ स्वार्थी लोगों ने सगुण साकार कल्पना की है। किंतु सृष्टि के पूर्व ही भगवान् ने देखा, सोचा तथा मुसकराये। अतः सिद्ध हुआ कि सृष्टि के पूर्व ही वे सदा साकार रहे हैं।

व्याख्या - जो अद्वैती ऐसा कहते हैं कि सृष्टि के पश्चात् पंडितों ने ब्रह्म को सगुण साकार निरूपित किया है। उन से पूछो कि सृष्टि हुई कैसे ? वेद स्वयं कह रहे हैं। यथा -

'सोऽकामयत्'। *(तैत्तिरीयो. २-६)*

स ईक्षत। *(ऐतरेयो. १-१-१, १-३-११)*

'तदैक्षत'। *(छान्दो. ६-२-३)*

'स ईक्षांचक्रे' आदि *(प्रश्नो. ६-३)*

'वीक्षितमस्य पंच भूतानि, *(वेद)*

'स्मितमेतस्य चराचरम् आदि। *(वेद)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् सृष्टि के पूर्व भगवान् ने संकल्प किया। देखा। मुसकराये। यह सब कार्य सगुण साकार भगवान् ही कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्म, बिना मन के कैसे सोचेगा ? बिना आँख के कैसे देखेगा ? बिना मुख कैसे मुसकरायेगा। जिस वेद वाणी से अद्वैती लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह भी साकार विग्रह के श्वास से ही प्रकट हुआ। यथा –

'निःश्वसितमस्य वेदाः'। *(वेद)*

केनोपनिषत् में यक्ष कथा को तो शंकर ने भी माना है। और लिखा है कि –

'ईश्वरेच्छया तृणमपि बज्रीभवति'।
सा नित्यमेव सर्वज्ञेश्वरेण सह वर्तते।

(शांकर भाष्य)

पुनः

'द्वादुशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः। *(ब्र. सू. ४-४-१२)*

इस ब्रह्मसूत्र के भाष्य में भी शंकर ने लिखा है। यथा –

यदा स सशरीरतां संकल्पयति तदा सशरीरो भवति। यदा त्वशरीरतां तदा त्वशरीरः। सत्यसंकल्पत्वात् संकल्पवैचित्र्याच्च।

(शांकर भाष्य)

अब विचार कीजिये कि अकर्ता, सत्तामात्र, प्रकाश पुंज भला संकल्प कैसे करेगा ? अतः ब्रह्म का सगुण साकार स्वरूप सृष्टि के पूर्व ही सनातन है। जब असमर्थ जीव ही निराकार होकर भी साकार शरीर धारण कर रहा है तो सर्वसमर्थ अघटित घटना पटीयान् भगवान् के लिये क्या असंभव है ?

फिर वेदों ने तो स्पष्ट कहा है। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अजायमानो बहुधा विजायते' *(यजुर्वेद ३१-१९)*

पुनः वेद ने तो शरीर का स्वरूप भी बताया है। यथा –

'द्विभुजं ज्ञान मुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरं,

तथा –

'कृष्ण एव परोदेवः । *(गो. ता. उ.)*

इस मंत्र में नाम भी बता दिया। पुनः

कः परमो देवः कुतो मृत्युर्विभेति, कस्यविज्ञानेनाखिलं विज्ञातं भवति।

(गो. ता. उ.)

'कृष्णो ह वै परमं दैवतम् गोविन्दान्मृत्युर्विभेति।
गोपीजनवल्लभज्ञानेनाखिलं तज्ज्ञातं भवति।
तस्मात्कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत् तं रसयेत् तं भजेत्।

(गो. ता. उ.)

पुनः-

कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड्विधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपीगोपसेव्यो वृन्दाऽऽराधितो वृन्दावनाधिनाथः स एक एवेश्वरः।

(ऋग्वेदीय राधिकोपनिषद्)

अनेक वेद मंत्रों में श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म माना है। शंकर ने भी अनेक स्थलों पर श्रीकृष्ण को भगवान् ही माना है। यहाँ तक कि जब भाष्य लिखने के पश्चात् ब्रह्मज्ञान नहीं मिल सका तो भगवान् की शरण गये। यथा –

नारायणकरुणामय शरणं करवाम तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदावसतु॥

(शंकर)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्तु ब्रह्म का दोनों ही स्वरूप सनातन है। यथा –

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च।' *(बृहदा. २-३-१)*

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

कारन हरि अवतार को, कृपा अकारन जान।
अपर जिते कारन कहे, तिनहिं गौण करि मान॥ ५६॥

भावार्थ – श्रीकृष्ण के अवतार के जितने भी कारण शास्त्रों में बताये गये हैं। वे सब ठीक ही हैं। किंतु प्रमुख कारण जीवों पर अकारण कृपा करना ही है।

व्याख्या – भगवान् के सदा असंख्य अवतार होते रहते हैं। अतः जन साधारण के मन में एक प्रश्न उत्पन्न होता रहता है, कि भगवान् तो सत्य संकल्प है। उसके संकल्प मात्र से ही सब कुछ हो सकता है। फिर दैत्यनाश, साधुरक्षा एवं धर्म संस्थापनादि कार्यों के लिये अवतार लेकर आने की क्या आवश्यकता है? दर्शन शास्त्र का एक नियम है। यथा –

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोऽपि प्रवर्तते। *(दर्शनशास्त्र)*

अर्थात् घोर मूर्ख भी बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करता। फिर सर्वज्ञ भगवान् भला निरर्थक कार्य क्यों करेगा?

भगवान् के अवतार के अनेक कारण शास्त्रों ने बताये हैं। उनमें प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं –

१. **न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे**

(भाग. १०-२-३९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥ (ब्र. सू. २-१-३३)

अर्थात् भगवान् के अवतार विनोद मात्र के लिये ही होते हैं। जैसे कोई राजा अपने विनोद के लिये वाटिका बनवाता है। किंतु इस कारण से जन साधारण संतुष्ट नहीं होता। क्योंकि राजा तो मायिक है। वह दुखी भी होता है। जबकि भगवान् तो आत्माराम है। उसे विनोद की क्या आवश्यकता है फिर ऐसे गोबर गणेश गंदे मायिक जगत् से उसे क्या मिलेगा?

२. दूसरा कारण गीता में स्वयं भगवान् ने बताया है। यथा -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (गीता ४-७)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतनामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥ (गीता ४-६)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता ४-८)

अर्थात् दैत्यों के नाश के लिये तथा साधुओं की रक्षा के लिये तथा धर्म संस्थापन के लिये अवतार होता है। इस उत्तर से भी तार्किकों को तुष्टि नहीं होती। क्योंकि इन कार्यों को भगवान् संकल्प से ही कर सकते हैं।

३. **मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।**
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
(भाग. ५-१९-५)

अर्थात् दैत्यों का नाश तो संकल्प से कर सकते हैं। एवं साधुओं की रक्षा तो दैत्यों के नाश के पश्चात् स्वतः हो जायगी। फिर भगवान् अपने भक्तों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के हृदय में बैठकर भी योगक्षेम वहन करते ही हैं। धर्म संस्थापन भी महापुरुष करते ही हैं। वास्तव में भगवान् का अवतार मनुष्यों को शिक्षा देने के लिये ही होता है। किंतु यह शिक्षा तो महापुरुष देते ही हैं। फिर अवतार क्यों ?

४. **तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।**
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥ *(भाग. १-८-२०)*

अर्थात् भगवान् का अवतार निर्गुण निर्विशेष निराकार ब्रह्म प्राप्त परमहंसों को प्रेम रस परिप्लुत करने के लिये ही निरन्तर होता है। यह कारण भी बुद्धि में नहीं बैठता। क्योंकि परमहंसों को भी प्रेमदान तो भक्त ही कर देंगे। भगवान् तो प्रेमदान भी नहीं करते। दर्शनादि जैसे बिना अवतार के ही सदा भक्तों को होते ही रहते हैं। ऐसे ही ज्ञानियों को भी होंगे।

५. **भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः।**
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन॥ *(भाग. १-८-३५)*

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।। *(भाग. १०-२९-१४)*

अर्थात् त्रिगुण, त्रिकर्म, त्रिदोष, त्रिताप से तप्त जीवों को अपने दिव्य नाम रूप गुण लीलादि से आकृष्ट करके उन्हें कृतार्थ करने के लिये ही अवतार होते हैं। यही प्रमुख कारण मुझे भी पसंद है। अतः गंभीर विचार द्वारा इसकी व्याख्या समझना है।

मायाबद्ध जीव अनादि काल से श्रीकृष्ण बहिर्मुख होने के कारण दुःखी है। वह परमानन्द ही चाहता है। यही जीव का स्वार्थ है। उसी स्वार्थ सिद्धि के हेतु ही भ्रमवश निरन्तर संसार में भटक रहा है। सारांश यह कि जब तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिव्यानन्द न मिल जायगा, तब तक मायाधीन का प्रत्येक संकल्प आनन्द प्राप्ति रूपी स्वार्थ के लिये ही होगा। किंतु जिनका कभी कोई स्वार्थ ही नहीं रहा। (भगवान् सदा आनन्दमय है) वह कोई भी कार्य अपने लिये कर ही नहीं सकता। सिद्ध महापुरुष भी भगवत्प्राप्ति के बाद अपने लिये कुछ नहीं कर सकता। यथा -

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

(गीता ३-१७)

फिर भगवान् कुछ भी करे तो क्यों करें।

स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है -

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

(गीता ३-२२)

अर्थात् मुझे कुछ पाना शेष नहीं है। अतः कुछ करना भी नहीं है। फिर अवतार का कारण क्या है ? इसका सीधा सा उत्तर यही है कि भगवान् या महापुरुष का कोई भी कार्य परोपकार के लिये ही होता है। यदि कोई कहे कि उनको जीव कल्याण की चिंता ही क्यों है ? वे तो निरीह हैं। इसका उत्तर यह है कि भगवान् एवं महापुरुष का यह करुणा का स्वभाव ही है। स्वभाव का कारण नहीं होता। यथा-

पर उपकार वचन मन काया संत सहज स्वभाव खगराया।

अतः सिद्ध हुआ कि सकारण कार्य मायाबद्ध ही करता है। किंतु मायातीत एवं मायाधीश अकारण कृपा के स्वभाव के कारण ही कार्य करते हैं। अतः सृष्टि का भी यही कारण है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्' *(शाण्डिल्य सूत्र)*

इसी से भगवान् वेदव्यास ने स्पष्ट कहा है कि -

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः॥

(भाग. ९-२४-५७)

अर्थात् भगवान् के दिव्य जन्म एवं दिव्य कर्मों का कोई स्वार्थजन्य कारण नहीं होता। केवल जीवों पर कृपा करना ही कारण है। सच तो यह है कि भगवान् एवं महापुरुष परोपकार के अतिरिक्त बिचारे कुछ कर ही नहीं सकते। इसे चाहे दुर्भाग्य कह लो अथवा और कुछ कह लो। अतः प्रमुख अवतार कारण अकारण करुणा ही है। आप कह सकते हैं कि राक्षसों को मारा भी तो है। भगवान् ही नहीं वरन् हनुमान, अर्जुन आदि महापुरुषों ने भी कोप किया है। फिर कृपा ही करने की बात कहाँ रही? किंतु वह कोप भी कृपा ही है।

क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः *(भाग. १०-१६-३४)*

क्योंकि मारे गये सभी राक्षस भगवान् में लीन हो गये। देखिये यों समझिये- जैसे पारस से किसी लोहे को चाहे प्यार से छुवा दीजिये चाहे लड़ा दीजिये। परिणाम स्वरूप सोना ही तो बनेगा। आग में चाहे कोई महिला सती होने के लिये बैठे, चाहे किसी को बाँध कर आग में डाल दो। दोनों को ही आग जला देगी। यह पृथक् बात है कि दैत्यों को वह ब्रजरस नहीं मिलता जो भक्तों को अनुकूल भाव की भक्ति से मिलता है। प्रतिकूल भाव की भक्ति वर्जित है।

सारांश यह निकला कि भगवान् का जन्म एवं कर्म जीव कल्याण के लिए ही होता है। शेष जो भी कारण शास्त्रों में वर्णित हैं। वे भी सही हैं। एक कार्य के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक स्तर के कारण होते हैं किंतु वे गौण कारण हैं ऐसी मेरी धारणा है। आप लोगों को जो भी कारण प्रिय लगे, वही कारण आपके लिये श्रेयस्कर है। मैंने तो अपने स्वार्थ के दृष्टिकोण से कृपा को ही प्रमुख कहा है। वस्तुतः

हरि अवतार हेतु जेहि होई, इदमित्थं कहि जात न सोई।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरि हरिजन के कार्य को, कारण कछु न लखाय।
पर उपकार स्वभाव वश, करत कार्य जग आय॥ ५७॥

भावार्थ - भगवान् एवं महापुरुषों के किसी भी कार्य का एक ही कारण है। वह यह कि उनका स्वभाव ही केवल परोपकार का होता है।

व्याख्या - वेद कहता है। यथा -

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(ईशा.)

अर्थात् भगवान् अनन्त मात्रा का पूर्ण होता है। अतः पूर्ण से पूर्ण निकालने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। ऐसे भगवान् के किसी भी कार्य में स्वार्थ होने का ही प्रश्न नहीं उठता। इसी प्रकार भगवत्प्राप्त महापुरुषों के विषय में वेदव्यास कहते हैं। यथा -

गुणातीतः स्थितप्रज्ञो विष्णुभक्तश्च कथ्यते।
एतस्य कृतकृत्यत्वाच्छास्त्रमस्मान्निवर्तते॥

(वेदव्यास)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् भगवत्प्राप्ति पर जीव कृतकृत्य हो जाता है। उसे पुनः कुछ भी करना अवशिष्ट नहीं रहता। यदि रहता भी है तो स्वार्थ रहित श्रीकृष्ण सेवा कार्य ही करना होता है। और यह अवस्था अनन्त काल तक बनी रहती है। यथा वेद-

सदा पश्यंति सूरयः तद्विष्णोः परमं पदम्।

(सुवालोप. छठवाँ मंत्र, मुक्तोपनिषद्)

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।

(तैत्तिरीयो. २-१)

अस्तु उपर्युक्त वैदिक प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि हरि एवं हरिजनों का कार्य केवल परोपकार के कारण ही होता है। यदि परोपकार उनका स्वभाव न होता, तो विश्व का एक भी मायाधीन जीव अपना लक्ष्य न प्राप्त कर पाता।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरि हरिजन के आचरन, मायामय मत जान।
उनके चरित अलौकिक, माया क्रीड़ा मान॥ ५८॥

भावार्थ - श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों के आचरण को मायिक मत समझिये। उनके आचरण माया के न होकर, योगमाया के होते हैं। अतः दिव्य होते हैं।

व्याख्या - भगवान् एवं महापुरुष दोनों का कार्य केवल भगवान् ही करते हैं। महापुरुष कुछ नहीं करता। भगवान् के प्रत्येक कार्य उनकी अन्तरंगा स्वरूप शक्ति के द्वारा ही होते हैं। स्वरूप शक्ति को ही योगमाया कहते हैं। योगमाया का तात्पर्य ही यह है कि माया सरीखा कार्य करते हुये भी अपनी अलौकिकता से युक्त रहना। अतः-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्त हेतु भगवान् प्रभु रामधरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥

अर्थात् भगवान् के कार्य देखने में प्राकृत ही दिखाई पड़ते हैं किंतु वे परम पवित्र दिव्य होते हैं। क्योंकि योगमाया से होते हैं। कहीं-कहीं योगमाया को भी माया लिखा है। उस माया का अर्थ '**मियते अनया,** दिव्य ज्ञान शक्ति होता है। अत: भगवान् सम्बन्धी सात्विक, राजस, तामस कर्म भी दिव्य होते हैं। साधारण भाषा में यों समझ लीजिये कि एक प्राकृत माया। एक दिव्य माया। इसी दिव्य माया या योगमाया से भगवान् काम, क्रोध, लोभादि के कार्य करते रहते हैं। जिनको देखकर प्राकृत जीव प्राकृत मान लेता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरि हरिजन के अटपटे, चरित न बुध लखि पाय।
अति विचित्र गति दुहुँन की, रसिकहिं समुझि सकाय॥ ५९॥

भावार्थ - भगवान् एवं महापुरुषों के कार्य अत्यन्त अटपटे होते हैं। उन्हें महानतम ज्ञानी भी नहीं समझ सकते। उन दोनों की विचित्र गति को वे ही समझ सकते हैं।

व्याख्या - जैसा मैंने पूर्व में बताया कि भगवान् एवं महापुरुषों के कार्य योगमाया से सम्पन्न होते हैं। वह योगमाया अघटित घटना पटीयसी है। असम्भव को भी सम्भव करती है। हम जिस कार्य को असम्भव मानते हैं, वह कार्य वहाँ स्वाभाविक है। काम का कार्य करते हुये काम से अतीत रहना। क्रोध का कार्य करते हुए क्रोध से परे रहना इत्यादि। आप सोचेंगे कि बिना काम के ध्रुव, प्रह्लाद आदि महापुरुषों के संतान कैसे हुई ? बस आपकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि फेल हो जायगी। हनुमान जी, अर्जुन जी आदि ने बिना क्रोध के करोड़ों हत्यायें कैसे की ? फिर वे सब निरन्तर भगवान् में भी मन को लगाये रहे। बस हमारी बुद्धि काम ही न करेगी। हम अपने समान ही उनको भी मान लेंगे। सदा यही होता आ रहा है। जैसे ५ वर्ष का शिशु संतानोत्पत्ति का विज्ञान कथमपि नहीं समझ सकता, ऐसे ही बिना योगमाया की शक्ति प्राप्त किये उनकी दिव्यता को भी कोई मायिक बुद्धिमान् नहीं समझ सकता। वस्तुतः योगमाया के कार्य में विरोधाभास स्वाभाविक है। वैसे तो आपके शरीर में भी विरोधाभास प्रत्यक्ष है। जैसे चेतन शरीर से जड़ नाखून एवं बाल निकलते हैं। फिर योगमाया शक्ति में विरोधाभास में आश्चर्य ही क्या है। गौरांग महाप्रभु कहते हैं यथा –

जार चित्ते कृष्ण प्रेमा करये उदय, तार वाक्य क्रिया मुद्राविज्ञे न बुझय।

अर्थात् भक्तों के वाक्य एवं कार्य एवं मुद्राओं को बड़े-बड़े ज्ञानी भी नहीं समझ सकते। क्योंकि उनको उस कक्षा का अनुभव ही नहीं है। ज्ञानी तो द्वैत को मानता ही नहीं फिर उसके पास योगमाया की शक्ति भी नहीं होती। उसके कार्य होते ही नहीं। फिर बिचारा वह कैसे समझेगा ?

अतः कहा गया है कि –

भगवत रसिक रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सके ना।

सोचिये-पाँचों पांडव महापुरुष हैं। यह बात आप उन के काल में मान लिये होंगे क्या ? आप तो यही सोचेंगे कि पाँचों भ्रष्ट हैं। एक पत्नी बनाये हुये हैं। विषय भोग भी करते हैं। संतान भी हैं। किंतु तुलसीदास कहते हैं।

उत्पत्ति पांडु सुतनि की करनी सुनि सतपंथ डर्‌यो,
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन यश सुनि सुनि लोक तर्‌यो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् श्रीकृष्ण ने तो रेकर्ड ही तोड़ दिया। सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियों के अकेले पति एवं प्रत्येक स्त्री के दस-दस बच्चे।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

दुइ माया इक विद्या, अपर अविद्या तात।
जाति अविद्या ज्ञान ते, विद्या भक्तिहिं जात॥ ६०॥

भावार्थ - दो प्रकार की माया होती है। १- विद्या। २- अविद्या। इन दोनों में अविद्या-माया की निवृत्ति तो ज्ञान से हो जाती है। किंतु विद्यामाया की निवृत्ति, भक्ति से ही होती है।

व्याख्या - श्रीकृष्ण की बहिरंगा शक्ति माया के २ रूप होते हैं। एक विद्या नाम की है। दूसरी अविद्या नाम की है। ज्ञानमार्गीय ८ अन्तरंग साधनाओं से अविद्या की निवृत्ति तो हो जाती है। त्रिपुटी समाप्त होने पर जब अहं का भी भेदन हो जाता है। तब अविद्या निवृत्त हो जाती है। किंतु प्रमुख बलवती माया तो विद्या है। इसे ही गुणावरिका माया भी कहते हैं। इस विद्या माया की निवृत्ति केवल श्रीकृष्ण कृपा से ही सम्भव है एवं कृपा केवल प्रपन्न जीव पर ही होती है। अतः श्रीकृष्ण भक्ति के बिना विद्या-माया कथमपि नहीं समाप्त हो सकती। जब तक विद्या-माया नहीं समाप्त होती, तब तक ज्ञानी का पुनः पुनः पतन होता रहेगा। त्रिगुण, त्रिकर्म, त्रिदोष आदि सब आधि-व्याधि घेरे रहेंगी। मोक्ष की तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती।

अतः प्रत्येक ज्ञानी को विद्या माया निवृत्ति एवं परमानन्द स्वरूप प्राप्ति के हेतु भक्ति करनी ही होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान मरै दै मुक्ति पद, कर्म मरै दै स्वर्ग।
अमर रहै इक भक्ति ही, चह न स्वर्ग अपवर्ग।। ६१ ।।

भावार्थ – मोक्ष देकर ज्ञान समाप्त हो जाता है। स्वर्ग देकर कर्म समाप्त हो जाता है। किंतु भक्ति अमरत्व दान करती है। स्वयं भी अमर रहती है। अतः भक्त, स्वर्ग मोक्ष कुछ नहीं चाहता।

व्याख्या – वैदिक स्मार्त विधि से युक्त कर्म करने से ही स्वर्ग मिलता है। यथा–

पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्

(प्रश्नो. ३-७)

किंतु कर्म, कर्मी को स्वर्ग भेज कर समाप्त हो जाता है। पश्चात् कर्मी का स्वर्गफल भी समाप्त हो जाता है। यथा –

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति।

(गीता ९-२१)

इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी का ज्ञान भी कैवल्य मोक्ष देकर स्वयं समाप्त हो जाता है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तीनों ही नहीं रहते। वहाँ तो एकत्व ही रह सकता है।

किंतु भक्ति आदि से अनन्तकाल तक रहती है। वह भक्ति मोक्ष तो दे ही देती है। साथ ही प्रेमानन्द भी प्रदान करती है। तथा अनन्तकाल तक भक्त के साथ रहती है। इसी से नारद जी ने कहा –

अमृतस्वरूपा च

(ना. भ. सू.- ३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्त को भी भक्ति अमर कर देती है। यथा –

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति-अमृतोभवति।

(ना. भ. सू. -४)

तभी तो वेद कहता है। यथा –

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।

(तैत्तिरीयो २-१)

अर्थात् भगवान् के साथ अनन्तकाल तक भक्ति द्वारा भक्त को प्रतिक्षण वर्धमान भक्ति रस मिलता रहता है। इस भक्ति के अनेकों स्तर हैं। यथा – साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति, स्नेह भक्ति, मान भक्ति, प्रणय भक्ति, राग भक्ति, अनुराग भक्ति, भावावेश भक्ति, महाभाव भक्ति। इन समस्त भक्ति स्तरों को ३ भागों में विभक्त किया है।

१. **सकाम भक्ति** – इसे साधारणी रति भी कहते हैं। इस भक्ति में अपने सुख की कामना रहती है। किन्तु वह इन्द्रियादि जन्य सुख श्रीकृष्ण सम्बन्धी ही चाहता है। संसारी नहीं। इस सकाम भक्ति से युक्त भक्त भी कृतार्थ हो जाता है। यथा – कुब्जा आदि। शुकदेव सरीखे जन्मजात परमहंस ने भी कुब्जा की प्रशंसा की है। यथा भागवत –

जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः।

(भाग. १०-९०-२७)

अर्थात् कुब्जादि स्त्रियां जो जगद्गुरु श्रीकृष्ण को पति मान कर विषय भोग चाहती हैं, उनकी तपश्चर्या का वर्णन कौन कर सकता है। तात्पर्य यह कि मेरे प्राप्त ब्रह्मानन्द से भी उत्कृष्ट है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकामता वह निन्दनीय है जो ब्रह्मलोक पर्यंत की कामना से युक्त हो। और ऐसी गंदी वस्तु श्रीकृष्ण से माँगी जाय। यथा -

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ।

(भाग. १०-४८-११)

अर्थात् श्रीकृष्ण की भक्ति करके भी जो महामूर्ख संसारी विषय चाहता है। वह परम निन्दनीय है। फिर भी साधारणी रति का भक्त, भक्ति के उच्च स्तर को नहीं पाता। वह प्रेमा भक्ति तक का ही सौरस्य प्राप्त कर सकता है।

२. **समंजसा रति** - यह सकाम एवं निष्काम मिश्रित भक्ति होती है। इसमें श्रीकृष्ण सम्बन्धी विषय की ही कामना रहती है। किंतु अपने सुख की कामना एवं श्रीकृष्ण के सुख की कामना दोनों ही समान रूप से रहती हैं। यह कुब्जादि के प्रेम से उच्च कक्षा का प्रेम होता है। इस भक्ति की भक्तायें रुक्मिणी आदि द्वारिका महिषीगण हैं। इस समंजसा भक्ति से युक्त भक्त प्रेमा भक्ति के आगे, स्नेह-भक्ति, मान-भक्ति, प्रणय-भक्ति, राग भक्ति एवं अनुराग-भक्ति पर्यंत जाते हैं।

३. **समर्था रति** - इसको निष्काम या विशुद्ध भक्ति कहते हैं यह भक्ति श्रीकृष्ण सुखैकतात्पर्यमयी होती है। इसमें भक्त अपना दिव्य आनंद भी नहीं चाहता। केवल अपने प्रियतम के सुख में ही सुख मानता है। इस भक्ति में लोक एवं वेद सब के नियम समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रेम को नारद ने सर्वोच्च मानकर कहा है।

'यथा ब्रजगोपिकानाम्'। *(ना. भ. सू.-२१)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस भक्ति से युक्त भक्त अनुराग भक्ति से भी आगे महाभाव भक्ति पर्यंत जाता है। यह महाभाव ही भक्ति की पराकाष्ठा का भाव है। यह ध्यान रहे कि प्रत्येक भाव की भक्ति प्रतिक्षण वर्धमान नित्य नवायमान ही रहती है। इस भक्ति में केवल युगल सेवा ही लक्ष्य रहता है। इसी भक्ति को ब्रह्मा शंकरादि भी चाहते हैं। इसी भक्ति की प्राप्ति के हेतु महालक्ष्मी ने चिरकाल तक घोर तप किया फिर भी नहीं प्राप्त कर सकीं। यथा –

यद्वांछया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता

(भाग. १०-१६-३६)

इसी भक्ति की प्राप्ति के हेतु ब्रह्मा ने तप किया किंतु नहीं प्राप्त कर सके। यथा –

षष्ठिवर्षसहस्त्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
नंदगोपब्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये ॥
तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः ॥

(वृहद्वामन पुराण)

अर्थात् उस भक्ति की तो कौन कहे, उन भक्ति वाली ब्रज गोपियों की चरण धूलि भी ब्रह्मा नहीं प्राप्त कर सके।

इस महाभाव के अंतर्गत एक ऐसा भी भक्ति का स्तर है जहाँ श्रीकृष्ण भी नहीं जा सके। वह मादनाख्य महाभाव कहलाता है। वहाँ केवल राधिका की ही गति है। यथा –

राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा।

(उ. नी. २०७, भ. र. सि.)

अस्तु भक्ति के सबसे निम्न स्तर की साधारणी रति भी शुकादि परमहंसों से वंदनीय है। अतः वेदव्यास –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण भक्तः सकामोऽपि वरोऽन्य सेवकात्खलु।
निष्कामादपि तत्कामो यतो मोक्षाय कल्पते॥

अर्थात् श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य स्वर्गीय देवी देवताओं की निष्काम भक्ति से भी श्रेष्ठ है श्रीकृष्ण की सकाम भक्ति। क्योंकि इससे माया-निवृत्ति भी हो जाती है। एवं गोलोक में श्रीकृष्ण का प्रेमानन्द भी प्राप्त होता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

पंच तत्व अरु अहं का, भेदन करि दे ज्ञान।
पै बिनु भक्ति न करि सके, भेदन प्रकृति महान॥ ६२॥

भावार्थ - ज्ञानी, ज्ञान से पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश तथा उससे भी परे अहंकार आवरणों का भेदन कर देता है। किंतु अहंकार से परे २ तत्त्व महान् एवं प्रकृति अवशिष्ट रह जाते हैं। इन दोनों में भी प्रमुख प्रकृति या माया है। यह प्रकृति केवल भक्ति से ही समाप्त की जा सकती है।

व्याख्या - पूर्व में बताया जा चुका है कि श्रवण, मनन निदिध्यासन, समाधि आदि द्वारा त्रिपुटी समाप्त हो जाती है। तब पांचों महाभूत एवं अहंकार भी चला जाता है। एकाकारता हो जाती है। यद्यपि मृत्युपर्यंत अंतःकरण तो रहता ही है। उसी अंतःकरण की उपाधि पर ही ज्ञानी निर्विकल्प समाधि लगाता है। इसके पश्चात् ज्ञानी के ज्ञान की गति नहीं है। अतः प्रकृति एवं महान् इन आवरणों से छुटकारा नहीं पाता। तदर्थ सगुण साकार भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करनी होती है। तब भक्ति द्वारा निरावरण होकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है। तब शरीर छोड़ने के पश्चात् ब्रह्म में समा जाता है। किंतु यह ध्यान रहे कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म नहीं बन जाता। किसी सत्ता का अभाव नहीं होता। यथा-

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥

(ब्र. सू. २-२-३६)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

अति विरक्त कहँ ज्ञान है, अति आसक्तहिँ कर्म।
जीवमात्र कहँ भक्ति है, यह अधिकारी मर्म॥ ६३॥

भावार्थ - अत्यन्त विरक्त, ज्ञान मार्ग का अधिकारी होता है। अत्यन्त संसारासक्त कर्म मार्ग का अधिकारी होता है। किंतु भक्तिमार्ग के अधिकारी जीवमात्र होते हैं।

व्याख्या - मायिक विषयों में घोर आसक्त व्यक्ति को कर्म का अधिकारी माना गया है। यथा -

कर्मयोगस्तु कामिनाम्। *(भाग. ११-२०-७)*

अर्थात् भागवत कहती है कि अत्यन्त आसक्त उच्छृंखल व्यक्तियों को वैदिक कर्म करना चाहिये। कर्म से प्रमुख अभिप्राय है वर्णाश्रम धर्म के कर्म।

मायिक विषयों से पूर्ण विरक्त साधन चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति ही ज्ञानमार्ग का अधिकारी होता है। इसके पूर्व ज्ञानमार्गीय सिद्धान्त '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**', *(ब्र.सू. १-१-१)* सुनने का भी निषेध है। इस कोटि के अधिकारी करोड़ों में भी दुर्लभ हैं। देहाभिमान रहित होना परमावश्यक है।

भक्तिमार्ग के तो सभी अधिकारी हैं। चाहे संसार में घोर आसक्त हो या विरक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो। साधक हो या सिद्ध हो। अज्ञानी हो या ज्ञानी हो। सदाचारी हो या दुराचारी हो। सभी श्रीकृष्ण भक्ति के अधिकारी हैं। यथा -

सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र हरिभक्तौ यथा नृप।

(पद्म पुराण)

सर्वधर्मबहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्रसन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्।

(वैशम्पा. संहिता)

यह श्रीकृष्ण की अकारण कृपा का सुपरिणाम है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

कर्म, ज्ञान अरु योग को, जो भी फल श्रुति गाय।
अनायास बिनु माँगे, भगत सकल फल पाय॥ ६४॥

भावार्थ - कर्म, ज्ञान एवं योग का जो भी फल शास्त्रों ने बताया है, वह सब बिना माँगे ही भक्ति से मिल जाता है।

व्याख्या - वेदव्यास ने भागवत में कहा है। यथा -

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि॥

(भा. ११-२०-३२)

अर्थात् समस्त वैदिक स्मार्त साधनाओं का जो भी फल हो सकता है। सब बिना कहे अनायास ही भक्ति से प्राप्त हो जाता है। तदर्थ पृथक्-पृथक् साधन नहीं करना पड़ता। किंतु वास्तविक निष्काम भक्त तो ५ प्रकार की मुक्तियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को भी नहीं चाहता। उसकी दृष्टि में नरक एवं मोक्ष में कोई अंतर नहीं है। यथा -

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाश पुष्पायते।

वेदव्यास ने भी कहा है कि सच्चे दास नरक स्वर्ग एवं मोक्ष इन तीनों को ही एक समान मानते हैं। यथा -

स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः।

(भाग. ६-१७-२८)

फिर भी यदि कोई सकाम भक्त मोक्षादि चाहे तो भगवान् सहर्ष दे देते हैं। भगवान् तो चाहते हैं कि जीव, मोक्ष ले ले और मेरा पीछा छोड़े। इसी से रसिकों ने कहा है। यथा -

हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात्सुदुर्लभा।

(भ. र. सि.)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सकल धर्म को मूल हैं, एक कृष्ण भगवान।
मूल तजे सब शूल हैं, कर्म, योग अरु ज्ञान॥ ६५॥

भावार्थ - समस्त धर्मों का मूलाधार श्रीकृष्ण ही हैं। शेष सब शाखा, उपशाखा, पत्र, पुष्पादि के समान हैं यदि मूल काट दिया जाय तो शेष सब ढह जायेंगे।

व्याख्या - भागवत में वेदव्यास ने कहा है कि -

'धर्ममूलं हि भगवान्'। *(भाग. ७-११-७)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् जितने श्रेय तत्त्व कर्म, योग, ज्ञानादि वेदों ने बताये हैं। वे सब श्रीकृष्ण के निमित्त ही हैं। यदि श्रीकृष्ण रहित कोई भी साधन होगा तो वह बंधन कारक ही होगा। अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्ण भक्ति ही वृक्ष की जड़ है। यदि जड़ ही निकाल दी जायगी तो वृक्ष स्वयं ढह जायगा। वैसे ही कर्मयोग ज्ञान सब श्रम मात्र ही होंगे। यथा -

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

(भाग. १०-१४-४)

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

(भाग. १-२-८)

सो सब धर्म कर्म जरिजावू।
योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥

वास्तविक धर्म वही है जिससे श्रीकृष्ण में अनुराग हो। इसी प्रकार वास्तविक ज्ञान वही है जिससे श्रीकृष्ण में प्रेम बढ़े।

'सा विद्या तन्मतिर्यया' *(भाग. ४-२९-४९)*

भक्तिहीन सब सोहइ कैसे बिनु जल वारिद देखिय जैसे।

अतः वह कर्म ज्ञानादि निंदनीय है, जो भक्ति रहित हैं। कर्मादि की तो सर्वत्र निंदा पाई जाती है किंतु ज्ञान की तो गीता में प्रशंसा की गई है। यथा -

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

(गीता ४-३८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः इस पर गम्भीर विचार करना है। वेदव्यास ने बहुत सुन्दर लिखा है। यथा–

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥

(भाग. १-५-१२)

अर्थात् भक्ति रहित ज्ञान निन्दनीय है। किंतु भक्ति सहित ज्ञान वन्दनीय है। भक्ति रहित सर्वोच्च ज्ञान समझ लीजिये। ज्ञान की ३ उपाधियाँ हैं। १- ज्ञाता २- ज्ञेय ३- ज्ञान। इन तीनों से रहित ब्रह्म से एकाकारता ही निरुपाधि ज्ञान कहा जाता है। यही निरंजन ज्ञान भी कहलाता है, जिसका निरूपण भागवत के उपर्युक्त श्लोक में है। वही ज्ञान नैष्कर्म्यज्ञान कहलाता है जिसमें निष्कर्म रूप ब्रह्म से एकाकारता हो जाय। इन दोनों प्रकार के ज्ञान वाले (निरंजन एवं नैष्कर्म्य) यदि श्रीकृष्ण भक्ति से रहित ही होते हैं तो माया-निवृत्ति नहीं करा सकते। पीछे की व्याख्याओं में कारण भी विस्तार पूर्वक बता चुके हैं। उपर्युक्त दोनों ही ज्ञानियों के पतन का कारण भी वेदव्यास ने बताया है। यथा–

येऽन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः॥

(भाग. १०-२-३२)

अर्थात् उन ज्ञानियों ने ज्ञान के मूलाधार भगवान् श्रीकृष्ण का अनादर किया है। (ज्ञानी लोग सगुण साकार को माया विशिष्ट निम्न कक्षा का मानते हैं) यह तो निर्विवाद सिद्ध सिद्धान्त है कि श्रीकृष्ण की माया, श्रीकृष्ण कृपा से ही समाप्त होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो हरि सेवा हेतु हो, सोई कर्म बखान।
जो हरि भगति बढ़ावे, सोई समुझिय ज्ञान॥ ६६॥

भावार्थ – जिस कर्म से श्रीकृष्ण की सेवा हो एवं जिस ज्ञान से श्रीकृष्ण प्रेम बढ़े। वही कर्म है एवं वही सही ज्ञान है।

व्याख्या – वेद विहित कर्म ३ प्रकार का होता है।

१. जो केवल श्रीकृष्ण की सेवा के निमित्त ही हो।

२. जो कर्म भक्ति रहित हो साथ ही फलासक्ति रहित भी हो।

३. जो कर्म किसी फल की इच्छा से ही हो।

इन तीनों में प्रथम कर्म जो श्रीकृष्ण सेवा के निमित्त ही होता है, वन्दनीय है। क्योंकि उसका फल माया-निवृत्ति एवं परमानन्द-प्राप्ति है। लक्ष्य श्रीकृष्ण सुखार्थ सेवा का है। इसलिये भागवत में कहा गया।

'तत्कर्म हरितोषं यत्'। *(भाग. ४-२९-४९)*

इसी प्रकार श्रीकृष्ण सम्बन्धी नाम रूप गुणादि ज्ञान ही वन्दनीय है, क्योंकि उससे भक्ति की वृद्धि होती है। हरि गुण श्रवण ज्ञान से ही शुकदेव ने ब्रह्म ज्ञान त्याग दिया था।

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः। *(भाग. १-७-११)*

अन्य ज्ञान तो बन्धन कारक ही हैं। भक्ति रहित कोई भी ज्ञान मुक्तिदाता नहीं बताया गया। जैसे किसी हीरे के मूल्य ज्ञान के अनुपात में ही प्रेम बढ़ता है। ऐसे ही ज्ञान से प्रेम वृद्धि होती है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह ज्ञान अज्ञान परिणामी ही मानना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरि निमित्त जो पाप कर, सोऊ पुण्य कहाय।
हरि तजि जो कर पुण्य तो, आप पाप बनि जाय॥ ६७॥

भावार्थ - भगवान् के निमित्त किया हुआ पाप भी धर्म हो जाता है एवं भगवान् को छोड़कर किया हुआ धर्म भी पाप हो जाता है। यथा वेदव्यास -

मन्निमित्तं कृतं पापं मद्धर्माय च कल्पते।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यान्मत्प्रभावतः॥

(वेदव्यास)

व्याख्या - समस्त धर्मों का मूल भगवान् श्रीकृष्ण हैं। अतः वेद कहता है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति। तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति॥

(कठोप. १-२-१५)

भागवत भी कहती है -

'धर्ममूलं हि भगवान्।' *(भाग. ७-११-७)*

अतः यदि श्रीकृष्ण के निमित्त समस्त धर्मों का त्याग कर दिया जाय तो अधर्म दिखाई पड़ते हुये भी परम धर्म है। वास्तव में तो बिना धर्मों के त्याग के शरणागति हो ही नहीं सकती। क्योंकि अनन्य शरणागति का संविधान है। यथा -

उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः॥

(मुण्डको. ३-२-१)

समस्त काम ही धर्म है।

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते। *(गीता ९-२२)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मामेकं शरणं व्रज' *(गीता १८-६६)*

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
(भाग. १-५-१७)

अर्थात् मन को एकमात्र श्रीकृष्ण के ही शरणागत करना है अतः मन से अन्य समस्त धर्मों के त्याग के बिना अनन्यता ही न बनेगी। गीता का अर्जुन तो पहले ही शरणागत था।

यथा -

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। *(गीता २-७)*

किंतु अनन्य नहीं था। धर्मों का पूर्ण त्याग नहीं किया था। अतः **'मामेकं शरणं व्रज'** समझा कर अनन्य बनाया। तभी कृतार्थ हुआ।

इसी प्रकार धर्म त्याग से ही अनन्य भक्ति हो सकती है। धर्म २ प्रकार का प्रमुख है। १- अपर धर्म या वर्णाश्रम धर्म या शारीरिक धर्म या आगंतुक धर्म या मायिक धर्म। २- पर धर्म या आध्यात्मिक धर्म या स्वाभाविक धर्म। यथा-

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। *(भाग. १-२-६)*

धर्म परायण सोइ कुल त्राता, राम चरण जाकर मन राता।

यही परधर्म है। यही मोक्षदाता एवं प्रेमदाता धर्म है। दूसरा अपरधर्म तो बन्धन कारक है क्योंकि मायिक है। परिवर्तन शील है। यथा - ब्रह्मचर्य का दूसरा धर्म, गृहस्थ का दूसरा धर्म, बाणप्रस्थ का दूसरा धर्म, संन्यास का दूसरा धर्म। किंतु इन धर्मों से माया निवृत्ति ही न होगी। पूर्व में बता चुके हैं कि यदि विधि युक्त होंगे तो नश्वर स्वर्ग मिलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि कोई कहे कि अपर या वर्णाश्रम धर्म न मानने वाले को पाप लगता है यथा –

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्त उल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञोच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न मे प्रियः।

(बाधूल स्मृति)

इसका रहस्य यह है कि यदि श्रीकृष्ण भक्ति न करे एवं वर्णाश्रम धर्म का भी त्याग कर दे, तभी पाप लगता है। यथा भागवत–

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः॥

(भाग. ११-११-३२)

अर्थात् धर्म के परित्याग के बिना अनन्यता बन ही नहीं सकती। यथा –

वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।

(ना. भ. सू.-४९)

मन से ही तो धर्म का पालन माना गया है। यदि मन से न होकर केवल लोक आदर्श के लिये वर्णाश्रम धर्म किया जाता है तो ग्राह्य है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

पुण्य देत फल नश्वर, पाप नरक लै जाय।
दोउन तजि जो हरि भजे, सोइ परम पद पाय॥ ६८॥

भावार्थ – विधिवत् किया हुआ पुण्य कर्म नश्वर स्वर्ग देता है। पाप कर्म नरक देता है। इन दोनों का परित्याग कर जो श्रीकृष्ण भक्ति करता है। उसे भगवान् का लोक प्राप्त होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – इस दोहे में सम्पूर्ण गीता का आशय है। यथा–अर्जुन ने प्रारम्भ में कहा कि मैं गुरुजनों की हत्या करके राज्य सुख भोग नहीं चाहता। श्रीकृष्ण ने समझाया कि हे अर्जुन! अगर तू युद्ध करेगा तो मृत्यु होने पर स्वर्ग एवं जीतने पर राज्य मिलेगा। यथा –

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

(गीता २-३७)

यदि युद्ध न करेगा तो पाप होगा एवं परिणामतः नरक मिलेगा। अब तू सोच ले कि स्वर्ग अथवा पृथिवी श्रेष्ठ है या नरक? अर्जुन ने कहा कि स्वर्ग भी नश्वर है। पृथिवी भी नश्वर है। नरक भी नश्वर है। अतः मैं इन सब को नहीं चाहता। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि युद्ध कर ऐसा भी न कर, क्योंकि स्वर्ग या पृथिवी तो मिलेगी और ये दोनों ही क्षणभंगुर हैं। तथा युद्ध न कर, ऐसा भी न कर, क्योंकि ऐसा करने से नरक मिलेगा। जो स्वर्ग से भी निकृष्ट है। अर्जुन यह सुनकर सोच में पड़ गया कि दोनों में एक तो करना ही पड़ेगा। श्रीकृष्ण ने कहा एक मार्ग और है। उसे समझ एवं पालन कर।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।

(गीता ८-७)

अर्थात् मन से मेरी भक्ति ही कर एवं शरीर से युद्ध कर।

मैंने पूर्व में बताया है कि कोई भी कर्म मन की आसक्ति से ही सम्बन्ध रखता है। यदि मन का अनुराग निरन्तर श्रीकृष्ण में रखा जायगा तो न पाप का फल मिलेगा, न पुण्य का फल मिलेगा केवल श्रीकृष्ण भक्ति का ही फल मिलेगा– यही कर्मयोग है।

अर्जुन समझ तो गया किंतु पुनः सोचने लगा कि जब पुण्य एवं पाप दोनों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फल उपर्युक्त प्रकार से नहीं मिलना है तो कर्म धर्म का पालन ही क्यों किया जाय ? फिर तो युद्ध त्याग कर केवल भक्ति ही करना बुद्धिमत्ता है। कर्मयोग के श्रम से तो कर्म संन्यास युक्त भक्ति सुगम है। इसका उत्तर भी श्रीकृष्ण ने दिया। यथा –

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥

(गीता ५-२)

अर्थात् तेरा सोचना भी ठीक है किंतु कर्म करने में एक परोपकार भी है। वह यह कि लोग तेरे कर्म का अनुकरण करेंगे। अर्थात् धर्म का पालन करेंगे। यदि तू केवल भक्ति करेगा तो लोग धर्म के त्याग मात्र का ही अनुकरण करेंगे। अतः जैसे मैं कर्मयोग का पालन कर रहा हूँ। ऐसे ही तू भी कर। ताकि अनुकरणकर्ता नास्तिक न बनें।

सारांश यह कि धर्म एवं अधर्म बन्धनकारक है। केवल भक्ति ही ग्राह्य है। फिर लोक आदर्श के लिये कर्म करे या न करे।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

भगति एक ऐश्वर्य अरु, इक माधुर्य कहाय।
पै नीरस ऐश्वर्य रस, ब्रज रसिकन न सुहाय॥ ६९॥

भावार्थ – दो प्रकार का भक्ति रस होता है। १– ऐश्वर्य रस युक्त। २– माधुर्य रस युक्त। किंतु ब्रजरस रसिकों को ऐश्वर्य रस युक्त भक्ति प्रिय नहीं है।

व्याख्या – पूर्व में बता चुके हैं कि भक्ति के अनेक स्तर हैं। इसी प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐश्वर्य रस एवं माधुर्य रस के भी अनेक स्तर हैं। यथा – पूर्ण ऐश्वर्य रस युक्त बैकुण्ठ (सबसे कम माधुर्य)। उससे अधिक माधुर्य द्वारिका में। उससे अधिक माधुर्य मथुरा में होता है किंतु इन तीनों रसों में ऐश्वर्य स्वतंत्र होता है। अत: माधुर्य पर अधिकार किये रहता है। केवल माधुर्य रस ब्रज में, उससे भी अधिक माधुर्य कुंज में, उससे भी अधिक माधुर्य निकुंज में, उससे भी अधिक एवं सर्वोपरि रस एकमात्र निभृत निकुंज में होता है। निभृत निकुंज में केवल युगल सरकार का ही प्रवेश है। निकुंज में अष्ट महासखियों का ही प्रवेश है। कुंज में समर्था रति वाली सभी सखियों का प्रवेश है। यही कुंज रस जीवों का पराकाष्ठा का ब्रजरस है। एक बात और समझना है। यह ब्रजरस ऐसा है कि श्रीकृष्ण एवं उनके भक्त स्वयं को नर ही मानते हैं। दोनों ही स्वरूप शक्ति के स्वरूप प्रभाव से स्वस्वरूप को भूले रहते हैं। किंतु यह भी याद रखना है कि पूर्ण ऐश्वर्य भी प्रच्छन्न रूप से सेवा करता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सबै सरस रस द्वारिका, मथुरा अरु ब्रज माहिँ।
मधुर, मधुरतर, मधुरतम, रस ब्रजरस सम नाहिँ॥ ७० ॥

भावार्थ – द्वारिका, मथुरा एवं ब्रज इन तीनों का ही रस माधुर्य रस युक्त है। क्योंकि श्रीकृष्ण रस सागर के ही धाम हैं फिर भी द्वारिका से मथुरा, एवं मथुरा से ब्रजरस अधिक सरस है।

व्याख्या – अनन्त सौंदर्य माधुर्य सुधारस सार सर्वस्व श्रीकृष्ण के ३ धाम प्रमुख हैं। यथा – द्वारिका , मथुरा एवं ब्रज। एक ही गन्ने के गुड़, चीनी एवं मिश्री तीन स्वरूप हैं। तीनों धामों में दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के रसिक हुये हैं। किंतु एक रहस्यात्मक अन्तर अवश्य है। वह यह कि द्वारिका में अधिक ऐश्वर्य एवं कम माधुर्य रहता है। और मथुरा में द्वारिका से अधिक माधुर्य एवं द्वारिका से कम ऐश्वर्य रहता है। इन दोनों धामों में भक्तों को ऐश्वर्य ज्ञान का भान बना रहता है। क्योंकि वहाँ ऐश्वर्य स्वतंत्र है। ऐश्वर्य ज्ञान से प्रेम संकुचित हो जाता है। यथा – जब अर्जुन को विराट् ऐश्वर्य रूप दिखाया गया, तो अर्जुन सरीखा गांडीवधारी भी डर गया। काँपने लगा। प्रेम संकुचित हो गया। तब अर्जुन ने कहा कि मुझे ऐसा स्वरूप नहीं चाहिये, जिसमें सख्य रस संकुचित हो जाय। इसी प्रकार दास्य एवं वात्सल्य तथा माधुर्य भाव भी ऐश्वर्य मिश्रण से संकुचित हो जाते हैं। यह ऐश्वर्य द्वारिका में सर्वाधिक है। मथुरा में उससे कम है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है – गौरांगमहाप्रभु के शब्द –

ऐश्वर्य शिथिल प्रेमे नहे मोर प्रीत।

अर्थात् जो प्रेम, ऐश्वर्य मिश्रण से शिथिल हो जाता है, उसमें मुझे कम सुख मिलता है। वह मुझे कम प्रिय है। अतः द्वारिका एवं मथुरा का प्रेम प्रगाढ़ कम होता है। सारांश यह कि द्वारिका एवं मथुरा के प्रेमियों के प्रेम में इतनी प्रगाढ़ता नहीं होती कि ऐश्वर्य ज्ञान पूर्णरूप से लुप्त हो जाय। प्रेम के प्रवाह में ऐश्वर्यज्ञान के बह जाने पर जो रस मिलता है, वही ब्रजरसिकों का ब्रजरस है। इस ब्रजरस में पूर्ण ऐश्वर्य एवं पूर्ण माधुर्य रहता है किंतु ऐश्वर्य का प्रभाव तिल भर भी नहीं रहता। ऐश्वर्य चोरी चोरी ही सेवा करता है। इस माधुर्य में स्वयं भगवान् कृष्ण स्वयं को ब्रजवासियों का स्वामी, सखा, पुत्र एवं प्रियतम ही मानते हैं। अपनी भगवत्ता का भान ही नहीं रहने देते। इसी प्रकार उनके परिकरों को भी यह भान नहीं रहता कि हम गोलोक के नित्य परिकर हैं। दोनों स्वस्वरूप को भूल जाते हैं। एक बार गोवर्धन धारण के समय कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण के प्रति ऐश्वर्य युक्त होने का संदेह हो गया। बस- श्रीकृष्ण रोने लगे। सखाओं के पूछने पर बताया कि लोग मुझे पता नहीं कैसे घूर-घूर कर देख रहे हैं। सदा वाली ममता नहीं है। फिर सब भूल गये। यह रस मधुरतम इसी से तो है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जिमि जलनिधि महँ जल कहत, अरु जलनिधि जल रूप।
तिमि हरि मधि आनंद अरु, हरि आनंद स्वरूप॥ ७१ ॥

भावार्थ - जिस प्रकार लोग यह कहते हैं कि समुद्र में जल है। तथा यह भी कहते हैं कि समुद्र, जल की राशि है। उसी प्रकार शास्त्र कहते हैं कि भगवान् में आनन्द है। और यह भी कहते हैं भगवान् ही आनन्द स्वरूप है।

व्याख्या - वेदों ने बताया है कि आनन्द ही भगवान् है। यथा -

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

(तैत्तिरीयो. ३-६)

अर्थात् आनन्द स्वरूप भगवान् से संसार उत्पन्न हुआ है, आनन्द में ही स्थित है। एवं आनन्द में ही इस विश्व का लय भी होता है। वही आनन्द, भगवान् कहा जाता है। पुनः वेदों ने यह भी कहा है।

यथा -

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः।

(तैत्तिरीयो २-५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् जीवों से परे एक ब्रह्म है जिसमें आनन्द ही आनन्द लबालब भरा है। वेदान्त भी कहता है

'आनन्दमयोऽभ्यासात्' *(ब्र.सू. १-१-१२)*

तात्पर्य यह कि भगवान् आनन्दमय है, यह भी ठीक है एवं भगवान् ही आनन्द है, आनन्द ही भगवान् है। यह भी ठीक है। वेद कहता है कि

'रसो वै सः। *(तैत्तिरीयो. २-७)*

अर्थात् वह रस (आनन्द) भी है। रसिक भी है। अपनी स्वरूप शक्ति से स्वयं रस लेता है एवं वही आनन्द अपने भक्तों को भी प्रदान करता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सोच साँच उपकार निज, सोच न पर उपकार।
करि ले प्यार मुरारि ते, तजि दे अपर विचार॥ ७२॥

भावार्थ - तुम अपने स्वार्थ पर विचार करो। परोपकार की बात न सोचो। और विचार त्याग कर, श्रीकृष्ण से प्यार करो।

व्याख्या - संसार में प्रायः यही कहने सुनने में आता है कि स्वार्थी होना बुरी बात है। किसी को यह कह दिया जाय कि तुम स्वार्थी हो तो अकाण्ड काण्ड खड़ा हो जाता है। अतः सब लोग परोपकारी ही बनना चाहते हैं। किंतु वे परोपकार का तात्पर्य कुछ नहीं समझते। परोपकार शब्द शास्त्रों में भी बार बार आया है। वेदव्यास आदि ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है परोपकार की। यथा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'परोपकारः पुण्याय,
पर उपकार वचन मन काया, संत सहज स्वभाव खगराया।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई। इत्यादि।

किंतु पहले परोपकार का शब्दार्थ एवं भावार्थ भी तो समझ लेना आवश्यक है। पर+उपकार इन दो शब्दों को मिलाकर परोपकार शब्द बनता है। पर शब्द का अर्थ है दूसरा। इसी शब्द पर प्रथम विचार करना है। पर शब्द के २ अर्थ हैं एक तो पर अर्थात् जीवात्मा। दूसरा पर अर्थात् जीवात्मा का शरीर। अतः उपकार भी दो प्रकार का होगा। एक तो आत्मा का उपकार एवं दूसरा शरीर का उपकार। अब इन दोनों पर गम्भीर विचार करना है। जिस प्रकार तत्त्व वेत्ताओं का 'मैं' आत्मा ही है एवं अज्ञानियों का 'मैं', शरीर ही है। उसी प्रकार उपकार भी दो प्रकार का होता है। अर्थात् संत महात्माओं एवं शास्त्रों की दृष्टि से परोपकार का अर्थ होगा-आत्मा का कल्याण तथा अज्ञानियों के दृष्टिकोण से परोपकार का अर्थ होगा शरीर सम्बन्धी विषयों का दान।

शरीर सम्बन्धी प्राकृत उपकार का तात्पर्य यही है कि किसी धनहीन को धनवान बना दे। किसी संसारी वैभवहीन को महान् वैभव दे दे। किंतु यह तो वास्तव में उपकार के स्थान पर आत्मा का अपकार ही होगा। क्योंकि यह तो सर्वविदित है कि -

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

(भाग. ९-१९-१४, विष्णु पु. ४-१०-२३)

अर्थात् संसारी विषयों के उपभोग से वासनायें और भी बढ़ेंगी। यह रोग तो ब्रह्म के लोक तक चला गया है। फिर भी एक क्षण को भी उपराम नहीं मिलता- यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरत्वलाभे सकलसुरपतित्वम्।
भवितुं सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्तते तृष्णा।

(गरुड़ पुराण)

अर्थात् संपूर्ण भूमंडल का एक क्षत्र सम्राट् भी स्वर्गसम्राट् बनना चाहता है। और स्वर्गसम्राट् भी ब्रह्मा का पद चाहता है। यथा –

ब्राह्मंपदं याचते।

जब सुरपति आदि का यह बुरा हाल है तो साधारण धनवान् आदि क्या सुख पा लेगा। संसार तो माया का बना है अतः प्राकृत है। और आत्मा तो परमात्मा का अंश है यथा वेद –

'चिन्मात्रं श्रीहरेरंशं सूक्ष्ममक्षरमव्ययम्।' *(वेद)*

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः *(गीता १५-७)*

ईश्वर अंश जीव अविनाशी चेतन अमल सहज सुखराशि।

अतः संसार कितना ही बड़ा मिल जाय, इससे आत्मा का सुख मिल ही नहीं सकता। यथा –

यत्पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।

(भाग. ९-१९-१३)

नालमेकस्यपर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्।

(वि. पु. ४-१०-२४)

अर्थात् यदि किसी एक व्यक्ति को ही सम्पूर्ण मायिक विश्व दे दिया जाय तो भी न तो तृष्णा जायगी। न शान्ति मिलेगी इतना ही नहीं वरन् और भी अशान्ति बढ़ेगी। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्यों प्रति लाभ लोभ अधिकाई।

लाभ से लोभ बढ़ता है। तथा एक रोग और भी लग जाता है। वह है अहंकार।

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीँ, प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।
श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता वधिर न काहि।

अतः अहंकार बढ़ने से वह स्वयं को ही दूसरा भगवान् मानने लगता है। फिर वह आत्म कल्याण की बात कभी सोच भी नहीं सकता। इसी से कुंती ने भगवान् से वर माँगा था। यथा -

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥

(भाग. १-८-२६)

अर्थात् हे श्रीकृष्ण! मुझे संसारी वैभव का अभाव दे दो ताकि हम अहंकार रहित होकर आपकी शरण में आ सकें। रावण, सुग्रीवादि महान् उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। चित्रकेतु राजा के १ करोड़ स्त्रियाँ थीं किंतु परिणाम तो भागवत में आपने सुना ही होगा। सौभरि मुनि ने कामांध होकर मान्धाता की ५० कन्याओं से एक साथ ५० शरीर धारण करके विवाह किया। हजारों वर्ष ५० शरीरों से विषय भोग किया। अंत में हारकर यही कहा। यथा-

अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात् प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत्॥

(भाग. ९-६-५०)

अर्थात् योग बल से ५० कायव्यूह देह धारण करने वाले मुझ योगीन्द्र का पतन सब लोग समझ लो। और भविष्य में कोई भी व्यक्ति विषय सेवन से इच्छा पूर्ति का लक्ष्य भूल कर भी न बुद्धि में लावो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे ही समुद्र की १ बूँद भी जिसे हम नहीं कह सकते, उस संसारी वैभव में ही हम मदान्ध बने हुये हैं। जरा सोचो कि कामदेव के समक्ष तुम्हारी सुन्दरता क्या है? कुबेर के समक्ष तुम्हारा धन क्या है? संसार का सबसे बड़ा सेठ कुछ खरब डालर का ही होगा इतने से तो कोई नगर भी नहीं खरीदा जा सकता। इसी प्रकार सम्मान में गणेशजी के समक्ष तुम्हारी क्या प्रतिष्ठा है? फिर भी इतना अहंकार है। यदि और भी वैभव हो जायगा तो वही हाल होगा जो भूत लगे, शराब पिये, उन्माद रोग ग्रस्त विश्चिक दंश पीड़ित बंदर का हो सकता है।

ग्रहगृहीत पुनि वात वश ता पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय वारुणी कहिय कहा उपचार॥

अस्तु संसारी उपकार महान् अनर्थकारी है। यथा -

अर्थोऽनर्थस्य कारणम्। *(सूक्ति)*

फिर संसारी उपकार भी तो तभी किया जा सकता है, जब अंतःकरण में त्याग आदि के दैवीगुण हों। अन्यथा तो संसारी स्वार्थी व्यक्ति उपकार की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। आजकल तो संसारी वस्तु देने वाले दंभी महात्माओं की भी भरमार है। और अज्ञानी लोग उनके पास भागे चले जा रहे हैं। वे अज्ञानी यह भी नहीं सोचते कि महात्मा जी ने तो संसार को हानिकारक मानकर त्याग दिया है। फिर मुझे क्यों दे रहे हैं। सब पागल हैं।

अस्तु वास्तविक उपकार यही है कि संसार की अनित्यता का ज्ञान करा कर उससे विरक्ति पैदा की जाय। तथा स्वस्वरूप (आत्मा) को समझाकर आत्मकल्याण सम्बन्धी उपाय कराया जाय। किंतु यह भी तभी सम्भव है जब स्वयं वह ज्ञान प्राप्त करे। सारांश यह कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परोपकार कर सकता है। अतः सर्वप्रथम वास्तविक स्वार्थ सिद्धि का प्रयत्न करना है। यथा –

स्वारथ साँच जीव कहँ एहा, मन क्रम वचन राम पद नेहा।

जब स्वयं महापुरुष बन जाय, तब परोपकार करे।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ब्रह्म श्याम हैं सूर्य सम, जीव किरन अनुहार।
दैवी माया गुणमयी, जानु रूप अंधियार॥ ७३॥

भावार्थ – श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं। जीवगण, सूर्य की किरन के समान हैं एवं गुणमयी माया अंधकार के समान है।

व्याख्या – गौरांग महाप्रभु ने बताया है। यथा –

सूर्यांश किरन जैछे अग्नि ज्वालाय जल
स्वाभाविक कृष्णेर तिन शक्ति हय।

(चै. च.)

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की किरणें, सूर्य से बाहर ही रहती हैं एवं सूर्य के समग्र ताप के समक्ष किरणों का ताप तुच्छ है अतएव निष्कर्ष यही है कि ऐसे ही भगवद्बहिर्मुख जीवों की शक्ति भी तुच्छ है। एवं वे जीव भी भगवान् से बाहर ही हैं तथापि यह तो मानना ही होगा कि वे तुच्छ ताप वाली किरणें सूर्य के ही अन्तर्गत हैं। अतः जीव एवं ब्रह्म का ऐक्य भी माना जाता है। अन्धकार भी सूर्य की ही अपर शक्ति है उसी प्रकार माया भी श्रीकृष्ण की बहिरंगा शक्ति है। यथा–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण सूर्य सम माया हय अंधकार।
जाहाँ सूर्य ताहाँ नाहिँ मायार अधिकार।

(चै. च.)

अर्थात् जैसे सूर्य के समक्ष अन्धकार नहीं जा सकता। वैसे ही श्रीकृष्ण के समक्ष माया नहीं जा सकती। यथा - भागवत

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।

(भाग. २-५-१३)

अतएव ब्रह्म, जीव, माया में भेद भी है। अभेद भी है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा-वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान॥ ७४॥

भावार्थ - अनन्त सिद्धान्तों का यही सार है कि सेव्य श्रीकृष्ण में मन का अनुराग हो। एवं श्रीकृष्ण सेवा की भावना निरन्तर बढ़ती जाय। यही अन्तिम तत्त्व ज्ञान है।

व्याख्या - शास्त्रों वेदों में कल्याण के अनेक साधन बताये गये हैं। यथा - वेदव्यास ने भागवत में अद्वितीय निरूपण किया है। उद्धव ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया है-

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता॥

(भाग. ११-१४-१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् हे श्रीकृष्ण! कल्याण के अनेक मार्ग शास्त्रों ने बताये हैं वे सब सत्य हैं? अथवा और कुछ रहस्य है। श्रीकृष्ण ने विस्तारपूर्वक इसका उत्तर दिया है। यथा –

कालने नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥
(भाग. ११-१४-३)

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा।
ततो भृग्वादयोऽगृह्णन् सप्त ब्रह्ममहर्षयः॥
(भाग. ११-१४-४)

याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि॥
(भाग. ११-१४-७)

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि॥
(भाग. ११-१४-९)

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम्।
अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम्॥
(भाग. ११-१४-१०)

आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः॥
(भाग. ११-१४-११)

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥
(भाग. ११-१४-२२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण सूर्य सम माया हय अंधकार।
जाहाँ सूर्य ताहाँ नाहिँ मायार अधिकार।

(चै. च.)

अर्थात् जैसे सूर्य के समक्ष अन्धकार नहीं जा सकता। वैसे ही श्रीकृष्ण के समक्ष माया नहीं जा सकती। यथा – भागवत

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।

(भाग. २-५-१३)

अतएव ब्रह्म, जीव, माया में भेद भी है। अभेद भी है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा-वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान॥ ७४॥

भावार्थ – अनन्त सिद्धान्तों का यही सार है कि सेव्य श्रीकृष्ण में मन का अनुराग हो। एवं श्रीकृष्ण सेवा की भावना निरन्तर बढ़ती जाय। यही अन्तिम तत्त्व ज्ञान है।

व्याख्या – शास्त्रों वेदों में कल्याण के अनेक साधन बताये गये हैं। यथा – वेदव्यास ने भागवत में अद्वितीय निरूपण किया है। उद्धव ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया है–

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता॥

(भाग. ११-१४-१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् हे श्रीकृष्ण! कल्याण के अनेक मार्ग शास्त्रों ने बताये हैं वे सब सत्य हैं? अथवा और कुछ रहस्य है। श्रीकृष्ण ने विस्तारपूर्वक इसका उत्तर दिया है। यथा –

कालने नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥
(भाग. ११-१४-३)

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा।
ततो भृग्वादयोऽगृह्णन् सप्त ब्रह्ममहर्षयः॥
(भाग. ११-१४-४)

याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि॥
(भाग. ११-१४-७)

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि॥
(भाग. ११-१४-९)

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम्।
अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम्॥
(भाग. ११-१४-१०)

आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः॥
(भाग. ११-१४-११)

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥
(भाग. ११-१४-२२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथं बिना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥
(भाग. ११-१४-२३)

अर्थात् श्रीकृष्ण ने कहा कि मैंने अपनी अनादि दिव्य वेद वाणी में तो केवल अपनी प्राप्ति का ही साधन बताया है। किंतु पाठकों ने भिन्न-भिन्न रुचि, भिन्न-भिन्न संस्कारादि के कारण उस वेद वाणी के अनेक विकृत अर्थ कर डाले। कुछ अर्थ पाखंडी स्वार्थी तत्त्वों ने भी किया। अतः अनेक मार्ग प्रचलित हो गये। यथा - कुछ लोग धर्म को (वर्णाश्रम धर्म) ही साधन बताते हैं। कुछ लोग यश को ही लक्ष्य सिद्ध करते हैं। कुछ लोग इच्छापूर्ति को ही उद्देश्य बताते हैं। कुछ लोग सत्य को, कुछ लोग मन के निग्रह को, कुछ लोग इंद्रियों के निग्रह को, कुछ लोग यज्ञ को, कुछ लोग तप को, कुछ लोग दान को, कुछ लोग व्रत को, कुछ लोग यम नियमादि को श्रेय सिद्ध करते हैं। किंतु उपर्युक्त सभी साधनों से माया-निवृत्ति एवं परमानन्द प्राप्ति का लक्ष्य हल नहीं हो सकता। क्योंकि इन सबमें मेरी भक्ति नहीं है। इन सब धर्मादिकों का फल केवल स्वर्ग है। और वह नश्वर, मायिक, क्षणिक है। जब स्वर्ग सम्राट् इन्द्र भी मायाबद्ध है, तो वहाँ जाने वालों का क्या हाल होगा। स्वर्ग में भी काम, क्रोध, लोभ मोहादि का आधिपत्य है।

वस्तुतः सत्य एवं दया से युक्त धर्म (सर्वश्रेष्ठ धर्म) एवं तपश्चर्या से युक्त ज्ञान (सर्वोच्च ज्ञान) भी अंतःकरण को भी सम्यक् शुद्ध नहीं कर सकता। माया-निवृत्ति का तो प्रश्न ही कहाँ? अतः उद्धव! मेरी भक्ति के सिवा मुझे प्राप्त करने का दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। तथा बिना मेरी भक्ति के मेरी कृपा प्राप्त करना भी असम्भव है एवं बिना मेरी कृपा के मेरी माया से कोई उत्तीर्ण ही नहीं हो सकता। इसी आशय से ब्रह्मा ने कहा था। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् ब्रह्म कात्स्न्र्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत्॥

(भाग. २-२-३४)

अर्थात् मैंने वेदों को ३ बार मथकर यही निश्चय किया है कि केवल श्रीकृष्ण भक्ति से ही कल्याण सम्भव है। अब आप ही सोचिये कि ब्रह्मा से बड़ा कौन वेदज्ञ होगा? ब्रह्मा के ४ मुख से ही तो वेद प्रकट होते हैं। फिर उन्हीं भगवान् के अवतार वेदव्यास भी कहते हैं। यथा -

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः॥

(स्कन्द पुराण, प्रभास खण्ड ३१७-१४, महाभारत)

अर्थात् हे मनुष्यों! तुम्हारी आयु एवं बुद्धि अल्प है। अतः तुम लोग शास्त्रों का रहस्य पढ़कर नहीं समझ सकते। मेरी बात मानो। मैंने सभी शास्त्रों का मंथन किया है और अनुभव भी किया है।

यथा -

अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम्।

(भाग. १-७-४)

वह अनुभव यही है कि केवल श्रीकृष्ण सुखैक तात्पर्यमयी भक्ति ही तुम्हारा चरम लक्ष्य है। इसी से श्रीकृष्ण सेवा प्राप्त होगी। यही ज्ञान सर्वोपरि मानो एवं भक्ति करो।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन मनमोहन भजन कर, सजन सनेही मान।
बिनुहिँ बुलाये आइहैं, जग विराग अरु ज्ञान॥ ७५॥

भावार्थ - हे मन! तू श्यामसुन्दर को ही अपना सर्वस्व मानकर उनका भजन कर। ज्ञान वैराग्यादि तो स्वयं ही बिना बुलाये आ जायेंगे।

व्याख्या - कुछ लोग कहते हैं कि भक्ति तो राग है। चाहे संसार की हो, चाहे भगवान् की हो। और राग तो कोई भी हो, वह बन्धन कारक ही होगा। वे लोग ध्यान दें। वेदव्यास कहते हैं। यथा -

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥

(भाग. १०-२२-२६)

अर्थात् भगवान् शुद्ध दिव्य चिन्मय सत्ता है। अतः उनकी कामना, उनकी अनुरक्ति परमवन्दनीय है। पुनः

हेया रागत्वादिति चेन्नोत्तमास्पदत्वात् *(शां. सू.)*

भक्ति के प्राचीनतम आचार्य शाण्डिल्य कहते हैं कि यह शंका नहीं करना चाहिये कि भक्ति, राग है। क्योंकि मायिक राग ही निन्दनीय है। ईश्वरीय राग तो करोड़ों जीवन्मुक्त परमहंसों को भी अप्राप्य है।

कुछ लोग कहते हैं कि शास्त्र कहते हैं कि **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**। **'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्'**। अर्थात् ज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्त करना असम्भव है। फिर भक्ति के द्वारा हमारा लक्ष्य ही नहीं मिलेगा। वे लोग ध्यान दें। हम पीछे भी स्पष्ट कर चुके हैं कि जिस ज्ञान से मोक्ष होता है, वह ब्रह्मज्ञान है। और ब्रह्मज्ञान केवल श्रीकृष्ण भक्ति से ही प्राप्त होगा यथा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।

(गीता १०-१०)

शंकर ने भी माना है। यथा -

तदनुग्रह हेतुकेनैव च विज्ञानेन मोक्षसिद्धिर्भवितुमर्हति।

(शां. भाष्य)

अतः भक्ति के बिना मुक्ति सम्बन्धी ज्ञान ही असम्भव है। ज्ञानी अपनी साधना के द्वारा जो ज्ञान अर्जित करता है, वह ब्रह्मज्ञान नहीं वरन् आत्मज्ञान है। ब्रह्मज्ञान के लिये तो गीता कहती है -

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

(गीता १८-५५)

श्रीकृष्ण की भक्ति से ज्ञान वैराग्य स्वयं मिलते हैं यथा -

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥

(भाग. १-२-७)

सारांश यह कि श्रीकृष्ण भक्ति करते-करते ही ज्ञान वैराग्य स्वयं प्राप्त हो जायेंगे। किंतु भक्त उनकी ओर निगाह उठा कर भी नहीं देखता। वह तो केवल सेव्य सुखार्थ सेवा ही चाहता है।

मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने।

भक्त तो श्रीकृष्ण को भगवान् भी नहीं मानना चाहता वह तो अपना स्वामी, अपना सखा, अपना पुत्र, अपना प्रियतम मान कर ही प्यार करता है। भगवान् भी अपनी भगवत्ता भुलाकर भक्त के साथ उसी भाव के अनुरूप प्यार देते हैं। ज्ञान वैराग्य का मूल्य क्या है ब्रजरस के आगे?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राकृत मन ते होत है, ज्ञानिन प्राकृत ध्यान।
भक्तन मन हरि कृपा ते, होत दिव्य सच मान॥ ७६॥

भावार्थ - मन प्राकृत है। अतः प्राकृत मन द्वारा किया हुआ ज्ञानियों का ज्ञान भी प्राकृत है। किन्तु भक्त को भगवत्कृपा से दिव्य शक्ति मिलती है। अतः उसका मन दिव्य हो जाता है। अतः उसका ध्यान भी दिव्य होता है।

व्याख्या - मन का निर्माण माया से ही हुआ है। इसीलिए गीता में श्रीकृष्ण ने मन को अपनी अपरा (निकृष्ट) प्रकृति के अंतर्गत निरूपण किया है यथा-

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता ७-४)

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७-५)

अतः मन से कुछ भी चितंन किया जाय सब मायिक ही है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई।

वेद एवं गीता दोनों का सिद्धान्त है यथा -

यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह।

(तैत्तिरीयो. २-९)

अर्थात् भगवान् दिव्य हैं एवं मन बुद्धि से परे हैं। अतः मन की गति वहाँ नहीं है। कोई भी ज्ञानी महावाक्यों का श्रवण मनन निदिध्यासन मन से ही तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करेगा। समाधि भी मन पर ही लगायेगा। अतः उसकी समस्त साधना प्राकृत ही मानी जायगी। यही कारण है कि अनन्त कल्प मन की साधना से भी ज्ञानियों को ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो जाय तो वह ब्रह्म भी प्राकृत सिद्ध होगा।

किन्तु यह बात भक्तों के मन पर लागू नहीं होती क्योंकि भक्त की भक्ति से स्वरूप शक्ति द्वारा दिव्यता प्राप्त हो जाती है। यहाँ तक कि शरीरेन्द्रिय मन बुद्धि सब दिव्य शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। तब दिव्य ध्यान होने लगता है। यदि कोई कहे कि यही बात ज्ञानियों के ब्रह्म द्वारा भी हो जाती होगी। तो उसे समझ लेना चाहिये कि ज्ञानियों का ब्रह्म अव्यक्त शक्तिक ही है। वह कुछ नहीं करता तो कृपा क्या करेगा?

एक बात और भी समझ लेनी है कि भगवान् तो भक्त का योगक्षेम वहन करते हैं यथा -

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो॥

(भाग. १०-२-३३)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

(गीता ९-२२)

श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण गीता में केवल भक्तों के लिये प्रतिज्ञा की है।

'न मे भक्तः प्रणश्यति'। *(गीता ९-३१)*

ज्ञानियों के लिये कहीं नहीं कहा कि **'न मे ज्ञानी प्रणश्यति'**। इससे अधिक और क्या प्रमाण अपेक्षित है। इसी से तो पूर्णज्ञानी पुनः भक्ति करता है। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा था -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो भज मां भक्तिभावितः

(भाग. ११-१९-५)

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।

(गीता १५-१९)

तात्पर्य यह कि वास्तविक ज्ञानी तो भक्ति करता ही है।

भक्तों के इन्द्रियादि दिव्य बनने का रहस्य यह है। प्रेम, श्रीकृष्ण की सर्वांतरंग ह्लादिनी संविदंश प्रधान शुद्ध सत्व की वृत्ति का ही नाम है। यह शुद्ध सत्व, मायिक सत्व गुण नहीं है। जब भुक्ति एवं मुक्ति की कामना समाप्त हो जाती है। तब श्रीकृष्ण कृपा से वह दिव्य प्रेम मिलता है। प्राकृत मन में दिव्य प्रेम नहीं प्रकट हो सकता। किंतु प्रथम भक्तों का मन भी प्राकृत होने से प्राकृत ध्यान ही बनता है। **नवधाभक्ति** में रूपध्यान प्रमुख रूप से रहता है तभी 'श्रीकृष्ण ही मेरे हैं, ऐसी ममता की वृद्धि होती है।' मैं उनका हूँ, यह भाव दुर्बल है। पश्चात् प्रेम की और अधिक प्रगाढ़ावस्था होती है। फिर उसी प्रगाढ़ता में सेव्य के ऐश्वर्य ज्ञान का लय हो जाता है। भक्त अपने भगवान् को अपने समान अथवा अपने से भी छोटा ही मानने लगता है। यही प्रेमाभक्ति है यही लक्ष्य है। इसके आगे की कक्षा के प्रेम तो किसी किसी अवतारी भक्त को ही मृत्युलोक में प्रकट होते हैं। शेष को तो शरीर त्याग के पश्चात् गोलोक में ही स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, महाभावादि प्राप्त होते हैं।

अस्तु यह समस्या भी हल हो गई कि प्राकृत मन से भक्ति करने पर कृपा द्वारा दिव्यशक्ति प्राप्त हो जाती है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरि विरही विरहाग ते, पंचकोश जरि जाय।
त्रिगुण त्रिकर्म त्रिदोष सब, आपुहिं जाय नसाय॥ ७७॥

भावार्थ – श्यामसुन्दर के वियोग की अग्नि में पाँचों कोश अपने आप भस्म हो जाते हैं एवं तीनों गुण, तीनों कर्म, तीनों दोष भी स्वयं समाप्त हो जाते हैं।

व्याख्या – मायाबद्ध जीव के बन्धन स्वरूप पाँच कोश होते हैं। जैसे अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश। इन कोशों का जरण जब तक नहीं होता, तब तक कर्मबंधन बना रहता है। अतः कुछ तार्किक कहते हैं कि भक्ति तो आसक्ति का ही स्वरूप है। अतः जैसे ज्ञानाग्नि में पंचकोश भस्म हो जाते हैं ऐसे भक्ति में तो हो नहीं सकते। फिर भक्त को मुक्ति कैसे मिलेगी ? इसका उत्तर वेदान्त रचयिता ने ही दे दिया है। यथा –

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा॥

(भाग. ३-२५-३३)

अर्थात् श्याम मिलन की परमाग्नि ज्वाला में पंचकोश ऐसे ही स्वयं भस्म हो जाते हैं जैसे भोज्य पदार्थ जठराग्नि में पच जाते हैं। इसी प्रकार सत्व, रज, तम तीनों गुण, संचित प्रारब्ध क्रियमाण कर्म, तथा तीनों दोष भी समाप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वरन् इन सबकी जननी माया भी समाप्त हो जाती है। यथा–

भक्ति करत सोइ मुकुति गोसाईं, अनइच्छित आवत वरि आईं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरि संयोग वियोग महँ, बड़ो वियोग बताय।
कारण यह कि वियोग महँ, कण कण श्याम लखाय ॥ ७८ ॥

भावार्थ – श्यामसुन्दर के संयोग एवं वियोग में वियोग को ही श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि वियोग में सर्वत्र केवल श्यामसुन्दर का ही दर्शन होता है।

व्याख्या – वियोग दो प्रकार का होता है। एक तो मिलन के पूर्व का वियोग। दूसरा मिलन के पश्चात् का वियोग। मिलन के पूर्व का वियोग तो वियोग मानना ही भ्रम है क्योंकि यदि इसे वियोग मान लिया जाय तो सभी मायाबद्ध जीव श्याम वियोगी सिद्ध होंगे। अतः संयोग के पश्चात् का वियोग ही वियोग माना जाता है। वैसे तो एक बार श्यामसुन्दर के मिलन के बाद सदा को ही मिलन हो जाता है। सिद्धांत यह है कि जो एक बार मिलकर अनन्तकाल तक कभी वियुक्त न हो, वही भगवान् का मिलन है। एवं जिस के मिलन के पश्चात् वियोग अवश्य हो, वही मायिक जगत् है। इसमें तो पाँच भौतिक देह का भी वियोग हो जाता है। इस प्रकार यह प्रश्न पैदा होता है कि फिर श्याम वियोग का अभिप्राय क्या है ?

वास्तव में भीतर से तो कभी वियोग नहीं होता। किंतु प्रेम सम्वर्धन के हेतु स्वरूप शक्ति द्वारा वियोग का अनुभव कराया जाता है। अथवा यों कह लीजिये कि जानबूझकर लुका छिपी की क्रीड़ा चलती रहती है। जैसे संसार में भी संयोग में हम लोगों की प्रवृत्ति अपने प्रिय में दोष दर्शन की होने लगती है। तथा अपने सौंदर्यादि का अहंकार भी हो जाता है किंतु वियोग में यह सब नहीं होता ऐसे ही दिव्य जगत् में भी दिव्य अहंकारादि होते रहते हैं। यथा – गोपियों को रास में मदयुक्त अहंकार हो गया था। अतः श्रीकृष्ण रास से अन्तर्धान हो गये थे। यह याद रखना है कि भगवत्प्राप्ति के पश्चात् के काम,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रोध, मद सब दिव्य हो जाते हैं। अतः वे दूषण नहीं वरन् भूषण हो जाते हैं। हाँ तो ब्रजगोपियों को जब वियोग दिया गया तो अहंकार चला गया। तब भगवान् प्रकट हो गये। द्वारिका की स्त्रियों को कई बार मिलन जन्य अहंकार हुआ था एवं श्रीकृष्ण ने कई बार दण्ड भी दिया था।

नित्य मिलन प्राप्त द्वारिकास्थ महिषियों को महाभाव कक्षा का प्रेम नहीं प्राप्त हो सका। यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। यह महाभाव रस वियोगिनी ब्रज की गोपियों को मिला था। सीधी सी बात यह है कि संयोग में तो अपना प्रिय एक ही स्थान पर गोचरित होता है किंतु विरह में सर्वत्र गोचरित होता है। अतः कहा गया है –

संगम विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्मात्।
संगे स इह तथैकस्त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

मायाधीन मलीन मन, है अनादि कालीन।
हरि विरहानल धोय जल, करु निर्मल बनि दीन॥ ७९॥

भावार्थ –यह मन अनादि काल से माया के आधीन है। अतः अत्यन्त मलिन हो गया है। अतः श्याम प्रेम के अश्रुजल से धोकर इसे निर्मल बना दो।

व्याख्या – ब्रह्म, जीव एवं माया तीनों ही अनादि हैं यथा –

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥

(श्वेता. १-९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः यह ईश्वर अंश जीव भी भगवद्बहिर्मुख होने के कारण अनादि काल से ही माया के आधीन है। एवं जीव की भाँति जीव का मन भी अनादि है। अनन्त जन्म बीत चुके। अतः अंतःकरण की मलिनता भी अनन्त मात्रा की है। जब हम एक वस्त्र को निरन्तर पहने हुए १ वर्ष नहीं धोते, तभी उस वस्त्र का कितना बुरा हाल हो जाता है तो अनन्त जन्म में मन की मलिनता का क्या कहना? यहाँ तत्वज्ञ समझा रहा है कि जैसे गंदे वस्त्र को शुद्ध जल में धोकर निर्मल किया जाता है। ऐसे ही मन को भी श्याम प्रेम जल से शुद्ध करो। तात्पर्य यह कि जब श्याम प्रेम में विभोर अपने प्रेमास्पद के मिलन के हेतु आंसू बहाता है, तभी अंतःकरण शुद्ध होता है। अन्यथा तो **'छूटहिं मल कि मलहिं के धोय,** के अनुसार संसार में और गंदा होगा -

प्रेम वारि बिनु सुनु खगराई, अभ्यंतर मल कबहुँ कि जाई।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

राधे राधे बोल नित, करु राधे को ध्यान।
ऐहैं निज गोलोक तजि, भाजत श्याम सुजान।। ८०।।

भावार्थ - निरन्तर श्री राधिका का ध्यान करते हुए उनका नामादि संकीर्तन करो। इसी साधना से श्यामसुन्दर बिना बुलाये भागे भागे अपना लोक छोड़कर आ जायेंगे। राधे नाम से श्यामसुन्दर को इतना अनुराग है।

व्याख्या - यहाँ राधा कृष्ण का एकत्व बताया गया है। अतः राधा या कृष्ण की भक्ति एक ही है। चाहे केवल राधा जी की भक्ति करो, चाहे केवल श्रीकृष्ण भक्ति करो। चाहे युगल सरकार की मिश्रित भक्ति करो। लीला में तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युगल सरकार के साथ परिकर भी रहते ही हैं। राधा कृष्ण एवं उनके परिकर सब एक ही हैं। केवल भक्तों को रस देने के लिये अनेक बन जाते हैं। मैंने पीछे विस्तार से समझाया है कि यद्यपि राधा कृष्ण एक ही हैं। फिर भी श्रीकृष्ण सदा राधा के आधीन रहते हैं। कारण यह है कि जैसे समस्त जीव आनन्द के दास हैं। वैसे ही ब्रह्म श्रीकृष्ण भी अपनी आनन्ददायिनी ह्लादिनी शक्ति की सारभूता राधा के आधीन रहते हैं। अतः राधा भक्त पर श्रीकृष्ण की विशेष कृपा रहती है। ब्रजगोपियों के प्रियतम तो श्रीकृष्ण ही हैं। किंतु वे राधा की ही प्रत्यक्ष दासियां हैं वेद की ऋचायें भी उन दासियों की दासियां बनी थीं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

तुम मेरे थे रहोगे, यह श्रुति वचन तिहार।
अधम उधारन नाथ पुनि, काहे मोहिं बिसार॥ ८१॥

भावार्थ – हे श्यामसुन्दर! तुम अनादिकाल से मेरे थे, और अनन्तकाल तक मेरे बने रहोगे, यह वेदों में तुम्हीं ने स्वयं कहा है। फिर अधम उधारन श्रीकृष्ण! मुझे क्यों भुला दिया?

व्याख्या – वेदों में जीव का नाता एकमात्र परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण से ही कहा गया है। यथा – **'अमृतस्य वै पुत्राः'** *(वेद)*

अर्थात् सभी जीव एकमात्र श्रीकृष्ण के पुत्र ही हैं। इतना ही नहीं वरन् वेद कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही जीव के पिता, माता, भ्राता, सखा, पुत्र, प्रियतम, गति आदि सब कुछ हैं। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिव्यो देव एको नारायणो माता पिता भ्राता निवासः शरणं सुहृत् गतिर्नारायण इति

(सुबालोप. छठवाँ मंत्र)

इसी आशय से गीता में भी भगवान् ने कहा है। यथा -

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।

(गीता ९-१८)

पुनः वेद कहता है। यथा -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

(श्वेता. ४-६)

तात्पर्य यह कि जीव का सर्वस्व श्रीकृष्ण ही हैं। हमारा सम्बन्ध अन्य किसी से न था, न है, न रहेगा। सम्बन्ध शब्द का अर्थ समझ लीजिये। (सम् - सम्यक्, पूर्ण + बन्ध धातु से अण् प्रत्यय) अर्थात् सब प्रकार से पूर्ण बन्धन। ब्रह्म की भाँति जीव भी अनादि है। अतः यह सम्बन्ध भी अनादि है। और ब्रह्म की ही भाँति जीव सदा रहेगा।

अतः यह समस्त सम्बन्ध भी भविष्य में सदा रहेगा। माया के प्रभाव के कारण हम लोग शारीरिक सम्बन्धी माता, पिता, भ्राता, सखा, पुत्र, स्त्री, पति आदि को अपनी बुद्धि में सगा सम्बन्धी मानते हैं। किंतु थोड़ा गम्भीर विचार कीजिये। इन शारीरिक सम्बन्धियों से हमारा सम्बन्ध किंचित् भी नहीं है। इसका एक कारण तो यही है कि हम शरीर नहीं हैं। हम तो चिन्मात्र, ईश्वर के दिव्य अंश हैं और जिनको हम माता, पिता, पुत्रादि कहते हैं वे तो नश्वर शरीर हैं। कोई भी व्यक्ति बतावे कि उसके माता, पिता, पुत्रादि कब तक साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देते हैं ? फिर जो क्षणिक साथ होता भी है। वह पूर्ण स्वार्थ का होता है। और वह स्वार्थ भी शारीरिक एवं सर्वनाश का कारण है।

कति नाम सुता न लालिता कति वा नेह वधूर भुंजि हि
क्व नु ते क्व नु ताश्च वा वयं भव संगः खलु पांथ संगमः

अर्थात् घोर मूर्ख भी सोच सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति के अनन्त जन्म हो चुके। प्रत्येक जन्म में पृथक्-पृथक् माता, पिता, पुत्र, पुत्री, स्त्री, पति भी अनन्त संख्या में बना चुके। किंतु अब वे कौन हैं ? कहाँ हैं ? कोई नहीं बता सकता। अतः इन संसारी सम्बन्धियों का सम्बन्ध तो ठीक वैसा ही है जैसे ट्रेन में विभिन्न यात्री एक-दूसरे से मिलते हैं। फिर अपने-अपने स्टेशन पर उतर जाते हैं। बस-सम्बन्ध समाप्त। जबकि श्रीकृष्ण का हमारा सम्बन्ध नित्य है। तथा स्वार्थ रहित है। जीव, श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति का अंश है। अंश एवं अंशी का नित्य सम्बन्ध है। यद्यपि भगवान् से विमुख होने के कारण माया का अधिकार हो गया है। जिससे जीव अपना स्वरूप एवं श्रीकृष्ण से अपना सम्बन्ध भूल गया है। किंतु भूल जाने से सम्बन्ध तो समाप्त नहीं हो जाता। संसार में कोई नवजात शिशु अपनी माँ को भी नहीं समझता अथवा कोई युवा व्यक्ति भी यदि मनो रोग से ग्रस्त होने के कारण माता, पिता को भूल जाय तो इससे माता, पिता तो नहीं बदल जाते। उसी प्रकार हमारा श्रीकृष्ण का भी सम्बन्ध मनो रोग (माया रोग) से ग्रस्त होने के कारण भूल गया है। यदि डाक्टर महापुरुष उस सम्बन्ध का बोध करा देता है तो हम माया एवं माया के मिथ्या सम्बन्धियों को मन से त्याग देते हैं।

अब साधारण बुद्धि वाले भी ध्यान दें। हम लोग संसारी माता, पिता, स्त्री, पति, पुत्रादि को अपना सम्बन्धी केवल इसीलिये तो मानते हैं कि हमारा स्वार्थ सिद्ध हो। हमारे दुःखादि में काम आयें। इसी से तो उनको स्वजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं। किंतु यही स्वार्थ सिद्धि की कामना तो उन सबकी भी तुम्हारे प्रति रहती है। दोनों ओर स्वार्थ की रस्साकशी चलती रहती है। जैसे ही दोनों का विपरीत स्वार्थ टकराता है। वैसे ही दोनों में स्वार्थ की आधार शिला के ढह जाने से द्वेष की अग्नि सारे सम्बन्ध भस्म कर देती है। वे ही माता, पिता, पुत्र, शत्रु बन जाते हैं।

यदि हम यह भी मान लें कि मेरा स्वार्थ कभी नहीं टकराता। अर्थात् कभी वैमत्य नहीं होता, तो भी उन बिचारों के पास है क्या? जो देखकर मुझे निहाल कर देंगे। वे स्वयं भिखारी हैं। भिखारी दयालु भी बनेगा तो क्या देगा? फिर उनमें ऐसी शक्ति भी नहीं है कि हमारे दुःखों को नष्ट कर सकें। यदि शारीरिक पदार्थ दे भी देंगे तो इससे हमको परमानन्द तो मिल नहीं जायगा। हम लोग तो सैकड़ों बार स्वर्ग सम्राट इन्द्र बन चुके हैं। किंतु क्या मिला? भगवान् तो पूर्ण काम हैं। उसका हमसे कोई स्वार्थ हो ही नहीं सकता। फिर सर्वशक्तिमान् भी हैं। हमारी समस्यायें हल करने में समर्थ है। फिर अंतर्यामी भी हैं। अतः बिना कहे ही हमारी रक्षा करता है। फिर आनन्दसिंधु है। अतः परमानन्द भी दे सकता है। फिर दयालु तो इतना हैं कि हमारे अनन्त अपराध करने पर भी (उसको सम्बन्धी न मानना) हमको पृथिवी, जल, तेज, वायु, अन्नादि प्रदान करता है। एक नास्तिक को भी वही संसार देता हे जो सम्बन्ध मानने वाले महापुरुष को देता है। न्याय तो यह है कि जैसे संसार में कोई पुत्र अपने पिता के प्रति यदि विपरीत व्यवहार करता है तो पिता भी वैसा ही करता है और यदि भगवान् भी ऐसा न्याय करे तो सृष्टि की एक वस्तु भी नास्तिक को न दे।

वास्तविक सम्बन्धी श्रीकृष्ण ने हमसे सदा नाता बनाये रखा है। देखिये- हमारे पिछले कर्मों का हिसाब-किताब रखा। फिर फल रूप में माँ के पेट में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखा। माँ भला पेट के बच्चे का पालन कैसे कर पाती? भगवान् ने वह भी किया। फिर पैदा होने पर माँ के स्तन में स्वभावतः दूध बनाया। फिर और बड़े होने पर अनेक खाद्य पदार्थों का प्रबंध किया। हम जिस संसार के वैभव के मद में अपने सम्बन्धी को भूले हुये हैं, वह संसार भी तो उसी का है।

इतना सब करने पर भी हम उसको अपना सम्बन्धी नहीं मान सके। तब उसने वेद प्रकट किये। हमने उसकी भी उपेक्षा की। फिर भी उस कृपालु ने अपने व्यक्ति (संत) भेजे। उन्होंने भी सम्बन्ध बताया। फिर भी हमने नहीं माना। फिर वे स्वयं बार-बार अवतार लेकर सम्बन्ध बताने आये। सबसे बड़ी बात यह है कि इतने गुनाह करने पर भी उन्होंने यह रियायत दी कि जो मुझे अपना सम्बन्धी मान लेगा, मैं उसके सब पिछले अपराध क्षमा कर दूँगा। माया को भगा दूँगा। स्वयं दास बन जाऊँगा उसे अपना लोक, अपना ज्ञान, अपना आनन्द दे दूँगा। ऐसे नित्य दयालु सम्बन्धी को सम्बन्धी न मानना दुर्दैव ही है।

भगवान् ऐसे सम्बन्धी हैं कि हमारे विपरीत आचरण पर भी हमारी रक्षा करते हैं। हमारा अस्तित्व (जीव का जीवत्व) भी उन्हीं की शक्ति से है। हमारी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि जो उनसे विमुख होकर संसार को अपना सम्बन्धी मान रही हैं। उनको भी तत्तत्कर्म करने की शक्ति भी भगवान् ही देते हैं। अन्यथा तो इन्द्रिय, मन, बुद्धि सब जड़ हैं। फिर भगवान् कहते हैं कि एक बार तू मुझे अपना सम्बन्धी मान ले। बस एक बार। फिर आगे का ठेका हमारा रहेगा। फिर माया आदि पास नहीं फटक सकती। काम, क्रोध, लोभ सब अपना-अपना बिस्तर गोल करके भाग जायेंगे। भगवान् कहते हैं कि तू मुझे भगवान् मत मान। केवल स्वामी या सखा या पुत्र या प्रियतम कुछ भी मान ले। तब भी मैं भगवान् की सारी भगवत्ता दे दूंगा।

यदि कोई कहे कि हमारे पाप कर्म का फल क्यों देता है? तो यह तो इसलिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देता है, ताकि दुःखी होकर, दंड पाकर मिथ्या सम्बन्धियों से विरक्त हो जाय। जैसे माँ, अपने शिशु को विविध प्रकार के दंड देकर सुधार करती है। ऐसे ही भगवान् भी करते हैं। किंतु हम नहीं समझते। अब समझ गये। अतः कृपा की याचना कर रहे हैं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हौं मानत हौं सदा को, हौं पातक अवतार।
अधम उधारन विरद पर, तुम तो करहु विचार॥ ८२॥

भावार्थ - हे श्रीकृष्ण! अनादिकाल से मैंने सदा पाप ही किया है, यह मैं मानता हूँ। किंतु तुम भी तो अपनी पतित पावनी प्रतिज्ञा पर विचार करो।

व्याख्या - प्रत्येक जीव सदा से ही भगवद्विमुख है। अतः स्वभावतः त्रिगुणात्मिका माया का आधिपत्य है। माया के कारण कोई भी जीव पाप ही तो करेगा। यदि कहो कि पुण्य भी तो कर सकता है। तो पुण्य भी तो पाप ही है। क्योंकि वह भी सात्विक माया का ही कार्य है पुण्य भी बन्धन कारक है। सीता जी ने राम से बड़ा सुन्दर प्रश्न किया था यथा -

'न कश्चिन्नापराध्यति।' *(वा.रा.)*

अर्थात् हे राघवेन्द्र! जिस पर आपकी कृपा न हो एवं जो मायाधीन हो, उसका एक भी ऐसा उदाहरण बता दो जो पाप के सिवा और कुछ करे हो। सीधी सी बात है या तो माया का कार्य होगा या तो ईश्वरीय कार्य होगा। अतः मायिक जीव माया का कार्य ही करेगा एवं ईश्वरीय भक्त ईश्वरीय कार्य ही करेगा। फिर मेरे पाप करने पर आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है? आपकी माया को तो बड़े-बड़े ज्ञानी ध्यानी भी नहीं जीत सके। फिर मेरी क्या हैसियत है? तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे पापों पर विचार न करो। केवल अपने विरद पर विचार करो। यदि तुम केवल यह नियम बनाते कि मैं निर्मल उधारन हार ही हूँ। तब तो मुझे बोलने का अधिकार ही न होता। किंतु तुम ने तो अपना विरद अधम उधारन वाला बनाया है।

यदि कहो कि तुम बहुत बड़े पापी हो तो तुमने अपने अधम उधारन हार वाले विरद में अधमता की मात्रा की शर्त क्यों नहीं रखी? फिर मेरी राय में तो एक भी जीव ऐसा नहीं हो सकता जिसके पाप सीमित मात्रा के हों। क्योंकि यदि एक जीव ने एक जन्म में केवल एक ही पाप किया होगा तो भी अनन्त जन्मों में प्रत्येक जीवों ने अनन्त पाप किया ही है। फिर छोटा पापी बड़ा पापी का भेद ही कहाँ रहा?

अस्तु अपने विरद पर पुनः विचार करो एवं मेरी विवशता पर भी विचार करो। यदि कहो कि तुमने स्वयं को अधम माना ही नहीं है एवं मुझे भी अधम उधारन नहीं माना है। ये दोनों बातें मान लो तो मैं कृपा कर दूँ। तो हे अकारण करुण! यह कृपा भी तुम ही कर दो कि मैं दोनों बातें हृदय से मान लूँ। यह माया मुझे यह भी नहीं मानने देती।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

नाम पतित पावन सुनि, निर्भय ह्वै किय पाप।
यामें दोष बताउ मम, दोषी तो हैं आप॥ ८३॥

भावार्थ – मैंने पतित पावन नाम सुनकर ही निर्भयता पूर्वक दिन रात धुवांधार, बिना सोचे विचारे ही पाप किये। किंतु इसमें मेरा क्या दोष है? दोष तो आपके नाम का है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – हे पतितपावन श्रीकृष्ण! आपका नाम पतित पावन है। यह आपके जनों ने ही बताया है। अतः यह नाम सुन कर मैं अल्पज्ञ निर्भय हो गया। और सोचने लगा कि अब पाप करने से क्यों डरें ? और धड़ल्ले से पाप करता रहा। अब आप ही बताइये कि इसमें क्या क्यों अपराध है ? मेरी बुद्धि का फटीचर हाल भी आप जानते ही हैं। अपनी बुद्धि के अनुसार ही तो प्रत्येक व्यक्ति कार्य करेगा। यदि आपका नाम पावन-पावन होता तो कदाचित् पाप करने में कुछ भय भी लगता और आपसे कुछ कहने का साहस भी न होता। अब तो आपको अपने नाम की लाज रखनी है। अन्यथा मैं तो सदा आपके ही दोष का प्रचार करता रहूँगा। एक रसिक इसी भाव से कहता है। यथा –

न वदामि न दुष्कृतं मयाकृतमित्युक्तिमिमां तु मे श्रृणु।
मम भीतिमनीनशद्विभो पतितोद्धारक नाम तावकम्॥

अस्तु मैंने अनन्त पाप किये किंतु सबसे बड़ा पाप यह है कि अंतःकरण में आपके पतित पावन नाम पर विश्वास नहीं है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

मन हरि में तन जगत में, कर्मयोग तेहि जान।
तन हरि में मन जगत में, यह महान अज्ञान॥ ८४॥

भावार्थ – जिसका मन सदा श्यामसुन्दर में ही अनुरक्त रहे, एवं शरीर से संसार का कार्य करे, वह कर्मयोग है। किंतु जिसका मन संसार में अनुरक्त रहे, एवं शरीर से भगवद्भक्ति करे, वह पराकाष्ठा का मूर्ख है।

व्याख्या – श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग की बड़ी सीधी सी परिभाषा बताई थी। यथा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च

(गीता ८-७)

अर्थात् मन का लगाव निरन्तर मुझ में ही किये रहो तथा शरीर से क्षत्रिय धर्मानुसार युद्ध करो। ऐसा करने पर युद्ध रूपी कर्म का बन्धन नहीं होगा। क्योंकि बिना मन के लगाव के किये हुये कर्म का फल ही नहीं मिलता। वास्तव में कोई भी कर्म मन की आसक्ति से ही कर्म कहलाता है। यही बात वशिष्ठ ने राम से कही थी।

यथा -

कर्ता वहिरकर्तान्तर्लोके विहर राघव।

(योग वाशिष्ठ)

अर्थात् हे राम! तुम भीतर से (मन की आसक्ति से) अकर्ता रहो एवं बाह्य इन्द्रियों से कर्म करते रहो। यह सबसे प्रमुख तत्त्व ज्ञान है। संसार में इस रहस्य को न जानने के कारण ही करोड़ों श्रद्धालु ठीक-ठीक भक्ति नहीं कर पाते हैं। वे केवल इन्द्रियों से ही भक्ति करते हैं। जो मन को संसार में आसक्त रखते हैं एवं इन्द्रियों मात्र से पूजा पाठ जप, कीर्तन भजन करते हैं, वे एक प्रकार का उलटा कर्मयोग करते हैं। अतः जहाँ मन की आसक्ति होती है, उसी का फल प्राप्त होता है। वे भोले भाले साधक मंदिर में खड़े होकर भगवान् से कहते हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

अर्थात् हे भगवान्! तुम्हीं एकमात्र हमारी माँ हो, हमारे पिता हो, हमारे बन्धु हो, हमारे सखा हो, हमारे ज्ञान हो, हमारे धन हो, हमारे सर्वस्व हो। ऐसा मुंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से कहते हुये भी वास्तव में मन की आसक्ति संसारी मां, बाप, बन्धु, सखा आदि में ही रखते हैं। सोचिये यह कितना बड़ा धोखा अपने सगे हितैषी को दिया जा रहा है। जबकि यह भी कहता रहता है कि **'दीन बंधु उर अंतर्यामी'** अर्थात् उनको अन्तर्यामी कहते हुए भी ठगने का प्रयत्न कर रहा है। किंतु वह ऐसी ठगाई में नहीं आ सकता। संसार में यदि कोई स्त्री, परपुरुष से प्यार करे एवं पति को प्राणप्यारे कहकर बेवकूफ बनावे और यह बात पति को ज्ञात हो जाय तो वह पति क्या न कर डालेगा? किंतु हमारे ऐसे करने पर भी हमारे प्रभु करुणा ही करते हैं एवं सदा आशा लगाये रहते हैं कि कभी तो मुझे अपनायेगा और अपनाने पर पिछले कर्म को देखता भी नहीं।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

यद्यपि हरि गुरु एक हैं, एक ज्ञान आनंद।
तदपि सृष्टि कर केवल, ब्रह्म सच्चिदानंद॥ ८५॥

भावार्थ - यद्यपि हरि एवं गुरु में कोई भेद नहीं होता। फिर भी संसार निर्माण कार्य केवल भगवान् ही करते हैं।

व्याख्या - वेद कहता है। यथा -

यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेता. ६-२३)

अर्थात् जिस प्रकार की अहैतुकी, अनन्य, श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी भक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति हो, ठीक उसी प्रकार की भक्ति गुरु के प्रति भी हो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तभी माया-निवृत्ति एवं परमानन्द प्राप्ति का लक्ष्य प्राप्त होता है। इसी आशय से नारद जी कहते हैं। यथा –

तस्मिंस्तज्जने भेदावाभात्

(ना. भ. सू.-४१)

अर्थात् भगवान् एवं उनके भक्त में कोई भेद नहीं होता। इसी आशय से वेदव्यास ने भी भागवत में कहा है। यथा –

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

(भाग. ११-१७-२७)

अर्थात् अपने गुरु एवं मुझे (श्रीकृष्ण को) समान ही नहीं वरन् एक ही मेरा स्वरूप समझो। मनुष्य शरीर एवं मनुष्य का सा व्यवहार देखकर उसे मनुष्य न समझो। उसमें समस्त दैवी शक्तियों का निवास मेरी ही भाँति रहता है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई
भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर्नाम वपु एक।

वास्तव में श्रीकृष्ण एवं गुरु इन दोनों में ही दोनों का (हरि में गुरु एवं गुरु में हरि) नित्य निवास रहता है। अतः अभेद है। देखने मात्र में दो शरीर प्रतीत होता है। शास्त्रों में गुरु का स्थान, श्रीकृष्ण से बड़ा भी बताया है। यथा –

मद्भक्तस्य ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः

(वेदव्यास)

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा, राम ते अधिक राम कर दासा।

मोते अधिक संत करि लेखे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यादि। किंतु यह बड़ापन इसलिये बताया गया है क्योंकि मायाबद्ध साधक का स्वार्थ गुरु से ही आदि से अंत तक सिद्ध होता है। गुरु ही प्रथम शास्त्रों वेदों का तत्त्वज्ञान कराता है। अर्थात् जीव, श्रीकृष्ण का सम्बन्ध बताता है। फिर अभिधेय अर्थात् श्रीकृष्ण प्राप्ति का उपाय बताता है। फिर दिव्य प्रेम प्राप्ति द्वारा प्रेमास्पद श्रीकृष्ण की सेवा का लक्ष्य बताता है। फिर साधना के पश्चात् अन्तःकरण शुद्धि होने पर गुरु ही दिव्य प्रेमदान करता है। अतः गुरु के प्रति विशेष आभार होने के कारण बड़ा कहता है। किंतु गुरु के पास जो ज्ञानानन्द है, वह भगवान् का ही दिया हुआ है तथा गुरु जो कुछ देता है, वह भगवान् की प्रेरणा से ही देता है अतः पूर्ण अभेद ही मानना उपयुक्त है। किंतु सृष्टि करने का कार्य केवल भगवान् ही करता है।

संसार का निर्माण एवं संसार में व्याप्त होना तथा संसार का संचालन, संसार की स्थिति, संसार का प्रलयादि कार्य भगवान् किसी गुरु को नहीं देता। इसी से वेदव्यास ने वेदान्त में एक सूत्र बनाया है। यथा–

जगद् व्यापरवर्जम्।

(ब्र. सू. ४-४-१७)

अर्थात् जगत् का निर्माणादि कार्य महापुरुष नहीं करता भगवान् की यही एक पृथक् पहिचान है। यथा वेद –

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

(तैत्तिरीयो. ३-१)

केवल परमानन्द भोग के दृष्टिकोण एवं अपहतपाप्मादि ८ गुणों की प्राप्ति के दृष्टिकोण से ही अभेद है। यथा –

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च *(ब्र.सू. ४-४-२१)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारांश यह कि सृष्टि का कार्य भगवान् ही करता है। शेष सब गुण एवं शक्तियाँ एक ही होती हैं।

एक अन्तर और भी है। यह अन्तर यह है कि श्रीकृष्ण एवं उनका शरीर एक ही है किंतु महापुरुष का शरीर (दिव्य) एवं शरीरी (आत्मा) पृथक्-पृथक् हैं। यथा -

देह देही भिदा चैवनेश्वरे विद्यते क्वचित्

आनन्दमात्र कर पाद मुखोदरादिः

आनन्दचिन्मय सदुज्ज्वल विग्रहस्य गोविंदमादि पुरुषं तमहं भजामि।

(ब्रह्म संहिता)

इस प्रकार हरि एवं गुरु में भेद होते हुये भी अभेद ही है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरि सुत कहँ हरिदासी, जड़ माया दुख देत।
बड़ अचरज पितु लखत नित, तबहुँ न सुत सुधि लेत॥ ८६॥

भावार्थ - माया शक्ति, शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की दासी है। जीव, श्रीकृष्ण का पुत्र है। माया दासी जीव पुत्र को अनादिकाल से दुःख दे रही है। यह दृश्य पिता सदा देखता रहता है। फिर भी पुत्र पर कृपा नहीं करता।

व्याख्या - वेद कहता है। यथा -**'अमृतस्य वै पुत्राः'**

अर्थात् समस्त जीवमात्र भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र हैं। माया के लिये वेद कहता है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

(श्वेता. ४-१०)

अर्थात् भगवान् मायाधीश है।

सो दासी रघुवीर की। मायाधीश ज्ञान गुनधामू।।

अतः जीव पुत्र अपने पिता श्रीकृष्ण से कह रहा है कि ऐसा कठोर तो संसारी पिता भी नहीं होता कि उसके समक्ष ही उसी की दासी निरन्तर पुत्र को कष्ट दे। और पिता चुपचाप मुसकराता रहे। यहाँ निरंतर देखना पिता का बताया है। क्योंकि वेद के अनुसार भगवान् सदा जीव में ही रहता है। यथा -

'य आत्मनि तिष्ठति।'

साथ ही प्रत्येक क्षण के प्रत्येक संकल्प भी नोट करता है। जीव को जीवन तथा इन्द्रियादिकों को भी तत्तत्कर्म करने की शक्ति भी प्रदान करता है। अतः निरन्तर देखता रहता है। इसलिये भी निरन्तर देखता है कि पता नहीं कब जीव मेरे शरणागत हो जाय।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

हरिदासी हैं मुक्ति सब, सबै जीव हरिदास।
महामूढ़ जो स्वामि तजि, कर दासी की आस।। ८७।।

भावार्थ - सभी मुक्तियाँ भगवान् श्रीकृष्ण की दासी हैं और समस्त जीव नित्य दास हैं। जो दास (जीव) अपने स्वामी को छोड़कर दासी (मुक्ति) की आशा करता है। वह महामूर्ख है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड मायिक है। उससे परे अनन्त परव्योम धाम हैं। इससे परे गोलोक है। इन सब में जितनी भी शक्तियाँ हैं, सभी ब्रह्म श्रीकृष्ण की दासियाँ हैं। किसी न किसी रूप में श्रीकृष्ण की ही सेवा करती रहती हैं। उन्हीं शक्तियों में एक शक्ति मुक्ति भी है। यह शक्ति, माया शक्ति की विरोधी है। यह मुक्ति ५ प्रकार की है। यथा अभेद वादियों की सायुज्य मुक्ति तथा भक्तों की सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, सालोक्य मुक्ति। इनकी कामना करना ही इनकी दासता है।

वास्तविक दास तो वह है जो पाँचों मुक्तियों का अपमान करके आगे बढ़ जाता है एवं श्रीकृष्ण सुख के हेतु ही उनकी सेवा चाहता है। वही एकमात्र बुद्धिमान है। मुक्ति की कामना भी सकामता मानी गई है। अतः निष्काम भक्त कोई मुक्ति नहीं चाहता। यहाँ तक कि देने पर भी नहीं लेता। सायुज्य मुक्ति तो भक्तों के लिये घोर विपरीत तत्त्व है। भागवत यथा –

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(भाग. ३-२९-१३)

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

वंदनीय है उपनिषत, यामे ज्ञान महान।
श्याम प्रेम बिनु ज्ञान सो, प्राणहीन तनु जान॥८८॥

भावार्थ – उपनिषत् भगवत्स्वरूप हैं। अतः वन्दनीय हैं। उनमें अनन्त ज्ञान भरा पड़ा है। किंतु उनसे श्रीकृष्ण प्रेम नहीं बढ़ता। अतः ज्ञान, प्राणहीन, शरीर के समान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या - श्रीकृष्ण के सहज निःश्वास से अनादि अपौरुषेय वेद प्रकट होते हैं। अतः भगवान् के समान ही परम वन्दनीय है। फिर उपनिषत् भाग तो वेदों का चरम ज्ञान स्वरूप है।

'सर्ववेदमयो हरिः'

(भाग. ७-११-७)

इसी से भगवान् श्रीकृष्ण को वेदकृत् वेदवित् वेदवेद्य कहा है। यथा -

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्योवेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

(गीता १५-१५)

जीवों के संस्कार एवं रुचि पृथक्-पृथक् हैं। अतः वेदों में सभी अधिकारियों के हेतु मार्ग निरूपण किया गया है। अतः किसी महापुरुष के द्वारा ही वेद का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। स्वयं वेद कहता है। यथा -

आचार्यवान् पुरुषो हि वेद।

(छान्दो. ६-१४-२)

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

(मुण्डको. १-२-१२)

अर्थात् श्रोत्रिय (वेद तात्पर्य मर्मज्ञ) ब्रह्मनिष्ठ (जिसने पूर्ण प्रेम प्राप्त कर लिया है) गुरु से ही वेदार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अन्यथा -

विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

अर्थात् अल्पज्ञों से वेद डरता है कि मेरा अनर्थ करेगा। अस्तु वेदों में भी उपनिषत् भाग तो वेदों का सारभूत तत्त्व है। बड़े-बड़े पाश्चात्य दार्शनिकों तक ने उपनिषदों के ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंतु यहाँ लेखक का अभिप्राय यह है कि भूखे को खाना चाहिये। व्यंजन ज्ञान की पुस्तक से पेट नहीं भरता। टाइम टेबल देखने मात्र एवं उसके रट लेने मात्र से तो मुसाफिर का सफर तय नहीं होता। उसी प्रकार इन सब उपनिषदों के ज्ञान से भगवान् में अनुराग नहीं हो पाता। ज्ञान तो वही वन्दनीय है जो साधक का स्वार्थ सिद्ध करे। श्रीकृष्ण प्रेम संवर्धन ही किसी भी ज्ञान का चरम लक्ष्य है। यदि उपनिषत् एवं वेदान्त सूत्र हमारा साध्य नहीं प्रदान करता तो हम उसको लेकर क्या करें? हमको तो श्रीमद्भागवत महापुराण सरीखे रसात्मक ग्रन्थ से ही विशेष लाभ होता है। इसी आशय से स्वयं वेदव्यास ने कहा है। यथा –

श्रुतमप्यौपनिषदं दूरे हरिकथामृतात्।
यन्नसंति द्रवच्चित्तकंपाश्रुपुलकादयः॥

अर्थात् श्यामसुन्दर की सरस लीला रहित शुष्क ज्ञान युक्त उपनिषत् ज्ञान से दूर ही रहना उचित है। क्योंकि उसके श्रवण मनन से श्रीकृष्ण सम्बन्धी प्रेम के सात्विक भावों (स्तम्भ, स्वेद, कंप, अश्रु आदि) का उद्रेक ही नहीं होता।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

मिलन पाय पिय विरह भय, विरह पाय नहिं चैन।
दुहुँन भांति अस दिव्य दुख, पाव रसिक दिन रैन॥ ८९॥

भावार्थ – श्यामसुन्दर के मिलन काल में भक्तों को यह भय रहता है कि कहीं वियोग न हो जाय। अतः दुःखी रहता है। वियोग में तो दुःखी होना स्वाभाविक है ही। इस प्रकार मिलन एवं वियोग दोनों ही दशाओं में भक्तों को दिव्य दुःख मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या – दिव्य प्रेम में यह विशेष विलक्षणता होती है कि श्याम मिलन की अवस्था में भी यह भय बना रहता है कि यदि कभी वियोग हो गया तो कैसे जीवित रह सकूंगा। नियम यह है कि जिस वस्तु के मिलन में जितना सुख मिलना है, उस वस्तु के वियोग में उतना ही दुःख मिलता है। अनन्त मात्रा के ब्रह्मानन्द का भी अनन्त गुना आनन्द प्रेमानन्द है। अतः उसके वियोग का दुःख भी अनन्त मात्रा का ही होगा। श्रीकृष्ण प्रेम में दोनों की ऐसी दशा हो जाती है कि मिलन काल में भी वियोग का अनुभव होने लगता है। राधा कृष्ण एक दूसरे का आलिंगन करते-करते ही एक दूसरे से कहने लगते हैं कि मेरी राधा कहाँ चली गई? मेरे श्यामसुन्दर कहाँ चले गये? इत्यादि। सखियाँ अनेक प्रकार के उपचार करती हैं। दोनों को स्वस्वरूप का बोध कराती हैं। फिर भी दोनों समाधि दशा में वियोग का ही अनुभव चिरकाल तक करते रहते हैं। यह अवस्थायें परमहंसों की बुद्धि से भी परे हैं।

संसार में तो मिलन में भी अल्प सुख मिलता है। अतः वियोग में भी अल्प ही दुःख मिलता है। अतः मिलन दशा में वियोग का चिंतन संसारी प्रेम में नहीं होता। फिर भी कभी-कभी यह झलक आ ही जाती है कि कहीं यह सुख छिन न जाय। किंतु श्रीकृष्ण प्रेम में यह स्वाभाविक रूप से होता रहता है। एक रसिक इसी बात को निम्न शब्दों में व्यक्त करता है। यथा –

अदृष्टे दर्शनोत्कंठा दृष्टे विश्लेषभीरुता।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता लभ्यते सुखम्॥

अर्थात् वियोग में तो दर्शन की व्याकुलता का दुःख रहता है एवं मिलन दशा में यह दुःख रहता है कि कहीं वियोग न हो जाय। अतः दोनों ही दशाओं में दुःख ही दुःख है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंतु यह समझे रहना चाहिये कि यह वियोग दुःख, मिलन के सुख से भी अधिक मधुर होता है। श्रीकृष्ण प्रेम (दिव्य) एवं संसारी प्रेम (आसक्ति) में यही प्रमुख अन्तर है। यही कारण है कि रसिकों ने दिव्य प्रेम को विषामृत की संज्ञा दी है। अर्थात् संयोग में संयोग, संयोग में वियोग, वियोग में वियोग, वियोग में संयोग का विचित्र अनुभव होता है। प्रत्येक दशा में अनन्त अनिर्वचनीय प्रतिक्षण वर्धमान दिव्यानन्द प्राप्त होता है। वहाँ दुःख का प्रवेश हो ही नहीं सकता। क्योंकि दुःख तो माया का विकार है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

अधम उधारन नाम सुनि, उर आशा बढ़ि जात।
भक्ति वश्य सुनि नाम पै, मन महँ अति डरपात॥ ९०॥

भावार्थ – हे श्रीकृष्ण! तुम्हारा पतित पावन नाम सुनकर मन में साहस होता है। क्योंकि मैं पतित हूँ। मेरा भी काम बन जायगा। किंतु जब भक्त वत्सल, भक्ति वश्य आदि नाम सुनता हूँ तो निराशा छा जाती है। डर लगने लगता है।

व्याख्या – भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्त स्वरूप हैं। अनन्त लीलायें हैं। अतः तदनुसार अनन्त नाम भी हैं। जैसे एक स्वरूप है ब्रह्म। वह अकर्ता है। एक स्वरूप है परमात्मा। वह न्याय करता है। सबके कर्मों का फल देता है। इस स्वरूप से भी किसी का काम नहीं बनता। क्योंकि प्रत्येक जीव के अनन्त जन्म हो चुके, अतः अनन्त पाप पुण्य भी हो चुके। यदि कोई भगवत्प्राप्ति भी कर ले। और भविष्य के कर्मबन्धन से अवकाश भी प्राप्त कर ले तो न्याय के अनुसार पिछले अनन्त संचित कर्मों को तो भोगना ही चाहिये। और वे कर्म अनन्त हैं, अतः अनन्तकाल तक भोगकर भी अनन्त ही शेष रहेंगे। अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्त होने के कारण भूतकाल के कर्मभोगों का कभी अन्त ही न होगा। तो फिर ऐसी भगवत्प्राप्ति या मुक्ति का प्रयोजन ही निरर्थक हो जायगा।

अब तीसरे स्वरूप पर विचार करना है। यह है श्रीकृष्ण भगवान् का स्वरूप। इसी से काम बनेगा। इस स्वरूप ने नियम बनाया है कि यदि कोई जीव मेरी शरण में आ जायगा तो उसके पिछले सब पाप पुण्य समाप्त कर दूंगा। यथा गीता –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८-६६)

इतना ही नहीं वरन् भविष्य का ठेका भी लेने की प्रतिज्ञा है यथा–

अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम्॥

(गीता ९-२२)

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

(गीता १२-६)

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्॥

(गीता १२-७)

इस प्रकार भूतकाल भी बन गया एवं भविष्य काल भी बन गया। वर्तमान तो बना ही है। और यह माया-निवृत्ति एवं आनन्द प्राप्ति सदा को मिल जाती है।

सदा पश्यंति सूरयः

(सुबालोपनिषद्, छठवाँ मंत्र, मुक्तोपनिषद्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरणागति भी २ प्रकार के लोगों की होती है। प्रथम-पतितों की शरणागति। द्वितीय-भक्तों की शरणागति। इन दोनों में पतितों की शरणागति से ही आशा होती है क्योंकि भगवत्प्राप्ति के पूर्व सभी पतित होते हैं। भक्ति प्राप्त होने पर तो भक्त वत्सल नाम उन भक्तों के ही काम का है। अतः पतित साधक तो भक्त वत्सल नाम से भयभीत ही होता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

काहे खोजत ब्रह्म को, श्रुतिन ऋचन भरमाय।
यशुमति कर ऊखल बंध्यो, देखहु ब्रज महँ जाय॥ ९१॥

भावार्थ - हे ज्ञानियों! तुम वेद की नाना ऋचाओं में ब्रह्म को निरर्थक क्यों खोज रहे हो? वह तो यशोदा नन्दरानी के हाथों से उनके प्रांगण में ऊखल से बंधा रो रहा है। अगर मेरे कथन पर विश्वास न हो तो ब्रज में जाकर देख लो।

व्याख्या - ज्ञानमार्गावलम्बी ब्रह्म को केवल निर्गुण निर्विशेष निराकार ही मानते हैं एवं आत्मा को ही ब्रह्म कहते हैं। वे वेदों के महावाक्यों (**तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि**) द्वारा ८ अन्तरंग साधनों से पहले '**तत्त्वमसि**' का मननादि करते हैं। पश्चात् '**अहं ब्रह्मास्मि**' का मननादि करते हैं।

किंतु ब्रह्म तो प्रकृति से अतीत प्रकाश स्वरूप है। अतः प्राकृत मन से दिव्य मनन हो ही नहीं सकता। अतः महान् एवं प्रकृति आवरणों का भेदन नहीं कर पाते। केवल आत्मज्ञान ही प्राप्त करते हैं। माया का अत्यन्ताभाव न होने के कारण बार-बार पतन दशा को प्राप्त होते रहते हैं। कुछ ज्ञानी तो श्रीकृष्ण को ब्रह्म मानकर भक्ति करने लगते हैं जिससे ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं किंतु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ ज्ञानी, श्रीकृष्ण को ब्रह्म नहीं मानते। वे भवार्णव में पुनः पुनः डूबते उतराते रहते हैं। अर्थात् जब तक समाधि में रहते हैं, तब तक प्रपंचातीत से बने रहते हैं। किंतु समाधि से निकलते ही प्रपंचाधीन होते रहते हैं। जैसे जड़ भरत आदि को पुनः हिरण बनना पड़ा। फिर श्रीकृष्ण भक्ति द्वारा ही कल्याण हुआ। यह निर्विवाद सिद्ध सिद्धांत है कि बिना श्रीकृष्ण कृपा के ब्रह्म ज्ञान या माया की आत्यंतिक निवृत्ति हो ही नहीं सकती। वेद कहता है-

यथा -

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्॥

(कठोप. १-२-२३)

अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति वेदों के महावाक्यों के श्रवण मनन आदि एवं वेदान्त परिमार्जित बुद्धि आदि से नहीं होती। वह तो श्रीकृष्ण की कृपा से ही होती है। गीता भी कहती है। यथा -

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

(गीता ११-५३)

भागवत में वेदव्यास भी कहते हैं। यथा -

स वेद धातुः पदवीं परस्य।

(भाग. १-३-३८)

तात्पर्य यह कि कोई भी कर्म या योग या ज्ञान या तप या साधन मन से ही होगा। और मन की गति मायिक क्षेत्र में ही है। अतः बिना श्रीकृष्ण कृपा के दिव्य शक्ति ही न मिलेगी। बिना दिव्य इन्द्रिय मन बुद्धि के निराकार ब्रह्म या साकार ब्रह्म का लाभ ही न मिलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः वह ब्रह्म, भक्तिवश्य है। तुम ब्रज में जाकर देखो वह नन्दकुमार बनकर यशोदा के आंगन में ऊखल में बाँध दिया गया है। अब वह मुक्तिदाता, ऊखल बंधन से मुक्ति माँग रहा है। किंतु वह मुक्ति, यशोदा की कृपा पर निर्भर है।

भागवत में वर्णित ऊखल बन्धन लीला निम्न प्रकार की है।

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि॥

(भाग. १०-९-१)

यानि यानीह गीतानि तद् बालचरितानि च
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत।

(भाग. १०-९-२)

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात्।
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ॥

(भाग. १०-९-२३)

अर्थात् एक दिन नन्दरानी यशोदाजी ने घर की दासियों को तो दूसरे कार्यों में लगा दिया। और स्वयं अपने लाला को मक्खन खिलाने के लिये दही मथने लगीं। यह सभी प्रिय जनों को स्वाभाविक इच्छा होती है कि मैं स्वयं खाना बनाकर अपने हाथ से खिलावूँ। फिर वात्सल्य भाव में तो यह इच्छा और भी बलवती होती है। इस प्रकार यशोदा जी दही भी मथती जा रही थीं। साथ में अपने लाला की भूतपूर्व बाल लीलाओं का स्मरण भी करती जा रही थीं। संसार में ऐसी लीलाओं को शैतानी कहा जाता है। यशोदा जी लहंगा पहिने हुये थीं। लाला के वात्सल्य के कारण उनके युगल स्तनों से दूध चूता जा रहा था एवं प्रेम विह्वल स्तन द्वय कांप रहे थे। रस्सी खींचते-खींचते हाथ कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थक भी गये थे। किंतु आज तो मैया ने मन में ठान लिया था कि अपने हाथ से मथकर ही अपने हाथ से मक्खन खिलावूँगी। अतः थकावट की परवाह किये बिना दही मथती जा रही थीं। हाथों के कंगन एवं कानों के कर्णफूल बार-बार हिलते जा रहे थे। मुँह पर पसीने की बूंदे झलक रही थीं। चोटी में गुथे हुये मालती के सुगंधित फूल गिरते जा रहे थे। (वास्तव में मैया के यहाँ तो सैकड़ों दास दासियाँ ही सदा काम करती थीं। अतः मैया को विशेष अभ्यास नहीं है। अतः विशेष थकावट लग रही थी) इस प्रकार दही मथते समय ही श्यामसुन्दर दूध पीने के लिये यशोदा के पास पहुँच गये। श्यामसुन्दर ने मैया के हृदय में अधिक प्रेम बढ़ाने के दृष्टिकोण से मथानी बड़े जोर से पकड़ ली एवं मैया को दही मथने से रोक दिया। मैया से भी नहीं रहा गया और क्रोध करने के बजाय श्यामसुन्दर को उठाकर गोद में बैठा लिया एवं चिपटाकर चुंबन करने लगी। कन्हैया को तो मैया के स्तन की तलाश थी। अतः तुरन्त दूध पीने लगे। मैया विभोर होकर लाला को कभी देखती कभी माथा चूमती रही। इतने में ही दूसरी ओर चूल्हे पर रखे हुये दूध में उबाल आने लगा। उफनते हुये दूध को देखकर यशोदा मैया श्यामसुन्दर के मुख को जबर्दस्ती अपने स्तन से छुड़ा कर दूध उतारने चली गयी। (वह दूध खासतौर से लाला के लिये उबाला जा रहा था) बस श्यामसुन्दर को गुस्सा आ गया। श्यामसुन्दर ने सोचा कि मुझसे अधिक प्रिय दूध है भले ही मैं भूखा रह गया। क्रोध में लाला के होठ फरकने लगे। होठों को दांतों से दबाकर श्यामसुन्दर ने पास में पड़े हुये लोढ़े से दही की मटुकी फोड़ फाड़ दी। बनावटी आँसू दिखाते हुये पास के दूसरे घर में जाकर मक्खन खाने लगे। यशोदा मैया औटते हुए दूध को उतार कर, फिर अपने दही मथने वाले स्थान पर चली गईं। वहाँ जाकर देखती हैं कि दही की मटुकिया टुकड़े-टुकड़े हो गई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैया समझ गई कि करतूत तो कन्हैया की ही हो सकती है। फिर यह भी देखा कि मेरे लाड़ले साहब घर से गायब हैं। तब गुस्से के साथ-साथ हँसी भी आ गई। इधर उधर ढूंढने पर पता चला कि सामने ही नटखट कन्हैया एक उलटे ऊखल पर खड़े हैं और छींके पर रखे हुए मक्खन को निकाल निकालकर बंदरों को खिला रहे हैं। असली बात यह है कि अपना गुस्सा बताने के लिये मैया के सामानों का नुकसान करना चाहते हैं।

कन्हैया का अपना पेट तो भर ही गया था। किंतु बंदरों को लुटाने में क्रोध शान्त हो रहा था। यह सब करते समय मन में डरते भी जा रहे थे कि कहीं मेरी हरकत पकड़ में न आ जाय। अतएव चौकन्ने होकर चारों ओर देखते जा रहे थे। अचानक यह दृश्य यशोदा मैया ने भी देख ही लिया। और चुपके-चुपके दबे पाँव चल कर कन्हैया के पीछे खड़ी हो गई। जब कन्हैया ने देखा कि मैया के हाथ में डंडा भी है। तब तो घबड़ा गये। और घबड़ा कर तुरन्त ऊखल से कूद पड़े और डर कर बेतहाशा भागने लगे। मैया भी पकड़ने के लिये पीछे-पीछे दौड़ी। यह दृश्य बस देखने योग्य था। ठाकुर जी ने निश्चय कर लिया कि मैया मुझे नहीं पकड़ सकती और मैया ने निश्चय कर लिया कि आज चाहे जहाँ तक भागना पड़े, किंतु कन्हैया को पकड़कर दंड देना ही है अन्यथा बड़ा होकर डाका डाला करेगा। बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र आत्माराम पूर्णकाम परम निष्काम अमलात्मा भी अपनी क्लिष्ट साधना से मन को एकाग्र कर भी जिन श्रीकृष्ण ब्रह्म को नहीं पकड़ पाते। उन्हीं वेद वेदान्त वेद्य ब्रह्म को पकड़ने के लिये एक वृद्धा महिला यशोदा दौड़ रही है। मैया के नितंब भारी थे। अतः दौड़ते-दौड़ते थकने लगी। थकावट से दौड़ना धीमा हो गया। अर्थात् पहले तो तेज दौड़ रही थी किंतु अब थकने लगी। मैया की चोटी की गाँठ भी खुल गई, चोटी में गुथे हुये फूल भी झड़ गये। कन्हैया ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखा कि मैया पसीना-पसीना हो गई है। हांफ रही है। अतः कृपा पूर्वक स्वयं ने भी अपनी दौड़ धीमी कर दी। फिर क्या था- मैया ने पकड़ लिया। मैया यह नहीं समझ पाई कि कन्हैया ने स्वयं को जान बूझकर पकड़वाया है। फिर मैया ने दोनों हाथ पकड़कर खूब डाँट लगाई। उस समय की कालात्मा काले कनुआ की झांकी अत्यंत दयनीय थी। कन्हैया ने अपराध तो कई कर डाले थे (मटुकी फोड़ दी थी। घर से भाग गये थे। मक्खन बंदरों को लुटा रहे थे।) अतः बाल स्वभावानुसार श्यामसुन्दर रोये जा रहे थे। हाथों से आँखें भी मलते जा रहे थे। सिसकरी भरके रोने का रस तो अनिर्वचनीय था। बार-बार हाथों से आँखों को मलने के कारण मुँह एवं गाल पर काजल की स्याही फैल गई थी। कितनी सुंदर झाँकी रही होगी मुख मंडल की ? मैया का डंडा अब पड़ने ही वाला है, यह सोचकर आँखे ऊपर उठा ली थी। ताकि मैया एवं मैया का डंडा न दिखाई पड़े। कितनी बुरी हालत है अब तो मैया को दया आ गई। हृदय के वात्सल्य प्रेम में क्रोध डूब गया। अतः मैया ने डंडा फेंक दिया। किंतु अगले ही क्षण यह सोचा कि ऐसे ही छोड़ देने से तो और शैतानी करेगा। अतः कुछ दंड तो देना ही चाहिये। ऐसा सोच कर यही निश्चय किया कि कम से कम ऊखल में तो बाँध ही देना चाहिये बस फिर तो मैया ने कन्हैया को बाँधने का उपक्रम प्रारंभ कर दिया। मैया ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा कि मेरा लाला कोई दैवी शक्ति युक्त या स्वयं भगवान् है। अतः कन्हैया के अनन्त ऐश्वर्य से सर्वथा अपरिचित थी। यदि ऐश्वर्य ज्ञान रहता तो फिर वात्सल्य रस ही समाप्त हो जाता। जरा सोचिये कि जिसमें न बाहर है, न भीतर है। न आदि है, न अंत है। जो जगत् के आदि में था, और अंत में भी रहेगा। तथा इस जगत् के भीतर भी व्याप्त है। बाहर गोलोक में भी है। कहाँ तक कहें जो स्वयं जगद्रूप भी है-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणामात् (ब्र. सू. १-४-२७)

जो इन्द्रियादि से परे अव्यक्त हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण को नर रूप धारण करने के कारण अपना साधारण पुत्र समझ कर मैया ऊखल में बाँधने जा रही है।

अस्तु-दास दासियों से रस्सी मँगवाकर जब मैया अपने कन्हैया को ऊखल में बाँधने लगी, तब वह रस्सी २ अंगुल छोटी पड़ गई। पुनः और रस्सी मँगाकर पुरानी रस्सी में जोड़-जोड़कर बाँधने का प्रयत्न करती गई, किंतु फिर भी सभी रस्सी २ अंगुल छोटी होती गई। अंततः ब्रज की सारी रस्सियां होड़ा होड़ी में समाप्त हो गईं, फिर भी श्यामसुन्दर नहीं बँध सके। मैया ने तो बाँधने की प्रतिज्ञा की थी किंतु जब नहीं बाँध सकी तो खिसिया गई। इधर अन्य वृद्ध महिलायें भी हँसने लगीं। इससे मैया और भी खिन्न हो गई। इस प्रकार जब कन्हैया ने देखा कि मैया बाँधने के प्रयास में थककर पसीना पसीना हो गई है। और अब मुझे घूर कर आश्चर्य से देख रही है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझे अपने लाला के सिवा और कुछ मान रही हो। बस तुरंत मैया के बंधन में बंध गये।

कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने। (भाग. १०-९-१८)

कुछ रसिकों की ऐसी मान्यता है कि जब सम्पूर्ण ब्रज की रस्सी समाप्त हो गई, तब राधा जी ने अपनी वेणी की रेशमी रस्सी दी। तब बँध गये। यह ठीक भी है कि राधा की शक्ति के आगे श्रीकृष्ण की माया नहीं ठहर सकती। अस्तु- मैया ने कस-कस कर कन्हैया को ऊखल में बाँध ही तो दिया। यद्यपि श्रीकृष्ण परम स्वतंत्र हैं। ब्रह्मादिक भी उनके सेवक हैं किंतु ब्रजवासियों की भक्ति के आगे भगवत्ता का ऐश्वर्य टिक ही नहीं सकता। यह माधुर्य रस की महिमा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखा कि मैया पसीना-पसीना हो गई है। हांफ रही है। अतः कृपा पूर्वक स्वयं ने भी अपनी दौड़ धीमी कर दी। फिर क्या था- मैया ने पकड़ लिया। मैया यह नहीं समझ पाई कि कन्हैया ने स्वयं को जान बूझकर पकड़वाया है। फिर मैया ने दोनों हाथ पकड़कर खूब डाँट लगाई। उस समय की कालात्मा काले कनुआ की झांकी अत्यंत दयनीय थी। कन्हैया ने अपराध तो कई कर डाले थे (मटुकी फोड़ दी थी। घर से भाग गये थे। मक्खन बंदरों को लुटा रहे थे।) अतः बाल स्वभावानुसार श्यामसुन्दर रोये जा रहे थे। हाथों से आँखें भी मलते जा रहे थे। सिसकरी भरके रोने का रस तो अनिर्वचनीय था। बार-बार हाथों से आँखों को मलने के कारण मुँह एवं गाल पर काजल की स्याही फैल गई थी। कितनी सुंदर झाँकी रही होगी मुख मंडल की ? मैया का डंडा अब पड़ने ही वाला है, यह सोचकर आँखे ऊपर उठा ली थी। ताकि मैया एवं मैया का डंडा न दिखाई पड़े। कितनी बुरी हालत है अब तो मैया को दया आ गई। हृदय के वात्सल्य प्रेम में क्रोध डूब गया। अतः मैया ने डंडा फेंक दिया। किंतु अगले ही क्षण यह सोचा कि ऐसे ही छोड़ देने से तो और शैतानी करेगा। अतः कुछ दंड तो देना ही चाहिये। ऐसा सोच कर यही निश्चय किया कि कम से कम ऊखल में तो बाँध ही देना चाहिये बस फिर तो मैया ने कन्हैया को बाँधने का उपक्रम प्रारंभ कर दिया। मैया ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा कि मेरा लाला कोई दैवी शक्ति युक्त या स्वयं भगवान् है। अतः कन्हैया के अनन्त ऐश्वर्य से सर्वथा अपरिचित थी। यदि ऐश्वर्य ज्ञान रहता तो फिर वात्सल्य रस ही समाप्त हो जाता। जरा सोचिये कि जिसमें न बाहर है, न भीतर है। न आदि है, न अंत है। जो जगत् के आदि में था, और अंत में भी रहेगा। तथा इस जगत् के भीतर भी व्याप्त है। बाहर गोलोक में भी है। कहाँ तक कहें जो स्वयं जगद्रूप भी है-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणामात् *(ब्र. सू. १-४-२७)*

जो इन्द्रियादि से परे अव्यक्त हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण को नर रूप धारण करने के कारण अपना साधारण पुत्र समझ कर मैया ऊखल में बाँधने जा रही है।

अस्तु-दास दासियों से रस्सी मँगवाकर जब मैया अपने कन्हैया को ऊखल में बाँधने लगी, तब वह रस्सी २ अंगुल छोटी पड़ गई। पुनः और रस्सी मँगाकर पुरानी रस्सी में जोड़-जोड़कर बाँधने का प्रयत्न करती गई, किंतु फिर भी सभी रस्सी २ अंगुल छोटी होती गई। अंततः ब्रज की सारी रस्सियां होड़ा होड़ी में समाप्त हो गईं, फिर भी श्यामसुन्दर नहीं बँध सके। मैया ने तो बाँधने की प्रतिज्ञा की थी किंतु जब नहीं बाँध सकी तो खिसिया गई। इधर अन्य वृद्ध महिलायें भी हँसने लगीं। इससे मैया और भी खिन्न हो गई। इस प्रकार जब कन्हैया ने देखा कि मैया बाँधने के प्रयास में थककर पसीना पसीना हो गई है। और अब मुझे घूर कर आश्चर्य से देख रही है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझे अपने लाला के सिवा और कुछ मान रही हो। बस तुरंत मैया के बंधन में बंध गये।

कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने। *(भाग. १०-९-१८)*

कुछ रसिकों की ऐसी मान्यता है कि जब सम्पूर्ण ब्रज की रस्सी समाप्त हो गई, तब राधा जी ने अपनी वेणी की रेशमी रस्सी दी। तब बँध गये। यह ठीक भी है कि राधा की शक्ति के आगे श्रीकृष्ण की माया नहीं ठहर सकती। अस्तु- मैया ने कस-कस कर कन्हैया को ऊखल में बाँध ही तो दिया। यद्यपि श्रीकृष्ण परम स्वतंत्र हैं। ब्रह्मादिक भी उनके सेवक हैं किंतु ब्रजवासियों की भक्ति के आगे भगवत्ता का ऐश्वर्य टिक ही नहीं सकता। यह माधुर्य रस की महिमा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊखल में लाला को बाँधकर मैया ने लम्बी साँस ली। जैसे मैंने ही अपनी शक्ति से बाँधा है। और थकावट दूर करने वहाँ से हट कर महल के विश्राम गृह में चली गई। इधर अच्छा अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने कुबेर पुत्र यमलार्जुन के उद्धार का निश्चय कर लिया। बस भगवान् तो सत्य संकल्प हैं। निश्चय करते ही वृक्ष धराशायी हो गये एवं कुबेर पुत्रों का उद्धार भी हो गया।

अस्तु - हे ज्ञानियों! यह तुम्हारे ब्रह्म की दयनीय दशा की कथा है। यह कथा तुम्हारे परमाचार्य वेदव्यास ने लिखी है। अतः तुमको सम्मानपूर्वक माननी होगी। मैंने जो यह कहा कि जाकर ब्रज में देख लो। तुम्हारा ब्रह्म यशोदा के हाथों ऊखल में बँधा है, यद्यपि सत्य है। तथापि अभी तुम लोग इस दृश्य के देखने के अधिकारी नहीं बने। प्रथम अधिकारी बनने के लिये कुछ विशेष उपाय करने होंगे। यह ब्रजरस उसी को मिल सकता है। जो ब्रज रसिकों की शरण ग्रहण करे एवं रागानुगा भक्ति करे। तथा यह भी शर्त है कि वह भक्ति निष्काम हो। जब ऐसी भक्ति करोगे, तब ब्रजांगनाओं की कृपा से वह दिव्य दृष्टि मिलेगी, जिससे ऊखल बंधनादि दृश्य देख सकोगे।

यह ठीक है कि तुम लोग शीघ्र अधिकारी बन जावोगे। क्योंकि तुम्हारा पात्र अच्छा है। फिर भी ब्रजवासियों की अनुगत भक्ति तो करनी ही पड़ेगी। अरे ज्ञानियों! तुम्हारे दादा गुरु लोग तो ब्रज में इस दृश्य को देखने के लिये वृक्ष बन कर खड़े हैं। फिर तुमको लज्जा क्यों? शायद इसलिये लज्जा आ रही है कि पहले द्वैत के विरुद्ध बहुत अनर्गल प्रलाप कर चुके हो। हमारे श्रीकृष्ण तो अकारण करुण हैं। सब क्षमा कर देंगे। तुम्हारी बिरादरी का ही एक परमहंस कहता है। यथा -

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं निगम वनेषु नितान्त खेद खिन्नाः।
विचिनुतभवनेषु वल्लवीना मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥ *(सूक्ति)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् - हे परमहंसों! वेद की ऋचाओं में ढूंढ-ढूंढ कर थक चुके हो। आओ-हम बताते हैं। वह वेदान्त वेद्य ब्रह्म यशोदा के आँगन में ऊखल में बँधा है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

ब्रह्म निरंजन जनि भनो, सुनहु खोलि निज कान।
अंजन बनि डोलै सदा, पाछे ब्रज बनितान॥ ९२॥

भावार्थ - हे ज्ञानियों! ब्रह्म को केवल निरंजन मत कहो जरा ध्यान देकर सुनो। यदि ब्रह्म निरंजन ही होता तो ब्रज गोपियों की आँखों का अंजन बन कर उनके पीछे पीछे लम्पट की भाँति न डोलता।

व्याख्या - एक परमहंस प्रेम विभोर होकर कहता है-

धन्या गोकुल कन्या वयमिह मन्यामहे जगति।
यासां नयन सरोजेष्वन्जन भूतो निरन्जनो वसति॥

(सूक्ति)

अर्थात् कोई, कोई देवी देवता को धन्य कहता है। कोई भगवान् को धन्यवाद देता है। मैं तो उन ब्रजांगनाओं को धन्य मानता हूँ। जिनके प्रेम ने निरंजन ब्रह्म की वैदिक परिभाषा ही बदल दी। वह निरंजन ब्रह्म अंजन बन कर गोपियों का दास बन गया है।

एक दूसरा परमहंस अपना अनुभव बता रहा है यथा -

यावन्निरंजनमजं पुरुषं जरंतं संचिंतयामि सकले जगति स्फुरन्तम्।
तावत्स्फुरति हन्त हृदन्तरे मे गोपस्य कोपि शिशु रन्जन पुंज मंजुः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् मैं तो आत्माराम पूर्णकाम हो चुका था। मेरा मन भी निवृत्त हो चुका था। मैं निरंजन ब्रह्म में ऐक्य प्राप्त कर चुका था। फिर भी एक गोप शिशु ने सब मटियामेट कर दिया एवं हृदय में स्वयं आकर बैठ गया।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जो नहीं जात बुलायेहु, शुक सनकादिक ध्यान।
बिनुहिं बुलाये जात सोइ, घर घर ब्रज वनितान॥ ९३॥

भावार्थ – जो सगुण सविशेष साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण, शुकदेव, सनकादिक परमहंसों की समाधि में अत्यन्त अधिक प्रयत्न करने पर भी नहीं जाता। वही ब्रह्म नन्दकुमार बनकर बिना बुलाये ही बरबस ब्रजांगनाओं के घर घर भागा स्वयं जाता है। कितना बड़ा आश्चर्य है।

व्याख्या – महानतम परमहंसों में भी सनकादिक चार भाइयों का स्थान सर्वोपरि है। एक तो वे भगवान् के अवतार हैं। दूसरे जन्मजात नित्य बालस्वरूप में ही रहते हैं। सदा से परमहंस हैं। इसी प्रकार शुकदेव भी जन्मजात परमहंस हैं। इन परमहंसों की समाधि में भी स्वामी बनकर भी सादर बुलाने पर भी जो ब्रजेन्द्रनन्दन आनन्दकन्द श्रीकृष्ण चन्द्र नहीं जाते। वे ही ब्रजांगनाओं के घर-घर बिना बुलाये ही अपमान सह कर भी जाते हैं। यह प्रेम का चमत्कार है। इसी भाव से एक परमहंस कहता है। यथा –

दास्यं गोकुल कामिनीषु कुरुषे स्वाम्यं न दत्तात्मसु।
जाने कृष्ण त्वदीय पाद युगलं भक्त्यैक लभ्यं परम्॥

(सूक्ति)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र अंतःकरण की उपाधि पर निर्विकल्प समाधि लगा कर तुमको सादर बुलाते हैं किंतु तुम नहीं जाते, जबकि गोपियों के घर-घर दासता करने जाते हो।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाके अगनित गुनन को, गावत वेद ऋचान।
दारी के, गारी सुनन, सोई छेड़त सखियान॥ ९४॥

भावार्थ - जिन ब्रह्म श्रीकृष्ण के अगणित गुणगणों को गाते हुये चारों वेद नहीं थकते। वे ही ब्रह्म श्रीकृष्ण ब्रज में गोपियों को हठात् छेड़ कर 'दारी के, इत्यादि गाली को सुनने में अपना परम सौभाग्य समझते हैं।

व्याख्या - ब्रह्म श्रीकृष्ण के अनन्त गुण हैं। यथा वेद -

अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। *(छान्दो. ८-१-५, ८-७-१)*

'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।' *(मुण्डको. १-१-९)* इत्यादि।

भागवत में वेदव्यास ने लिखा है कि श्रीकृष्ण के दिव्य गुणों की गणना नहीं हो सकती। यथा -

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।
(भाग. १०-१४-७)

अर्थात् हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे अनन्त गुणों को कोई नहीं गिन सकता। पुनः -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।

(भाग. ११-४-२)

अर्थात् जो श्रीकृष्ण के अनन्तगुणों को गिनना चाहता है। वह भोला है। पुनः भागवत - **अनन्त कल्याण गुणात्मकोऽसौ।**

इस प्रकार श्रीकृष्ण में अनन्त दिव्य गुण हैं। चारों वेद निरन्तर उन गुणों को गाते नहीं अघाते। किंतु ब्रजवासी उनको केवल अपने समान नर मानकर व्यवहार करते हैं और वह ब्रह्म भी उनके अपमान जनक कटु वाक्यों को सुनने के लिये विपरीत व्यवहार करता है। यही माधुर्य रस युक्त भक्ति है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाको कहि निर्लेप अस, पुनि पुनि वेद पुकार।
जाकर देखहु मधुपुरी, सोइ कुब्जा को यार॥ ९५॥

भावार्थ - जिस सगुण साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण को वेदों ने बार-बार निर्लेप कह कर निरूपण किया है। उसी निर्लेप ब्रह्म को मथुरा में जाकर तो देखो। वह कुब्जा का पति बनकर घोर लिप्त हो रहा है।

व्याख्या - वेदों ने अनेक ऋचाओं के द्वारा ब्रह्म को निरंजन, निर्लेप कहा है। अर्थात् ब्रह्म परिपूर्ण है -

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अतः उसे किसी से कभी भी कुछ नहीं चाहिये। वह तो स्वयं में रमण करता है। यथा -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मन्यवरुद्धसौरतः। *(भाग. १०-३३-२६)*

ब्रह्म को प्राप्त कर लेने वाले ही आत्माराम पूर्णकाम बन जाते हैं। फिर ब्रह्म की बात कौन करे। किंतु मथुरा का वृत्तांत इस परिभाषा को ही उलट देता है। क्योंकि श्रीकृष्ण जब मथुरा गये तो कुरूप कुब्जा को अपनी शक्ति से रूपवती बनाकर उसके साथ विहार किया और उस कुब्जा की प्रशंसा भी शुकदेव सरीखे परमहंस ने किया। यथा -

जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः।

(भाग. १०-९०-२७)

अर्थात् कुब्जा के तप की कल्पना मैं भी नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि निर्लिप्त ब्रह्म, कुब्जा में लिप्त हो गया।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाके भय भयभीत हो, महाकाल बरजोर।
जरासन्ध के भय सोई, भाजि बन्यो रणछोर॥ ९६॥

भावार्थ - जिसके भय से साक्षात् यमराज भी भयभीत होता है। वही सर्वसमर्थ सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण जरासंध राक्षस के भय से भागकर द्वारिका में शरण लेता है एवं रणछोर की उपाधि पाकर विभोर होता है।

व्याख्या - वेद कहता है। यथा -

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

(कठो. २-३-३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् उस कालात्मा भगवान् के भय से अग्नि, सूर्य, इन्द्रादि अपना कार्य करते हैं। यमराज भी कांपता है। इसी आशय से भागवत भी कहती है। यथा-

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात्॥

(भाग. ३-२५-४२)

भागवत में एक बड़ा ही रोचक चित्रण है। यथा -

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम्।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह॥

(भाग. ३-४-१६)

अर्थात् बिना इच्छा का कर्म, अजन्मा का जन्म, कालात्मा का जरासन्ध के भय से भागकर द्वारिका जाना, आत्माराम का महारास यह सब विरोधाभास महानतम बुद्धिमानों की बुद्धि को भी खिन्न कर देता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाको आत्माराम कहि, वेद ऋचान बखान।
सोइ गोपिन सँग रास कर, गोपिहुँ वेद ऋचान॥ ९७॥

भावार्थ - ब्रह्म श्रीकृष्ण को वेदों की ऋचायें बार-बार आत्माराम, आत्मरति, आत्मक्रीड़ कह कर निरूपित करती हैं। वही ब्रह्म ब्रज में गोपियों के साथ महारास रूपी रमण करता है। और आश्चर्य यह है कि वेद की ऋचायें रास में सम्मिलित हैं।

व्याख्या - गोपियों की कई कक्षायें हैं। कुछ गोपियाँ श्रीकृष्ण स्वरूपा हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे गोलोक से अवतीर्ण होकर आई हैं। कुछ दंडकारण्य के परमहंस हैं जिनको भगवान् राम ने वरदान दिया था। कुछ गोपियां अग्नि पुत्र हैं। इनको भी वरदान द्वारा प्रथम बार रास रस मिला था। कुछ गोपियाँ जनकपुर की कन्यायें हैं एवं कुछ गोपियाँ स्वयं वेद की ऋचायें हैं। जिनको प्रथम बार रास मिला, वे सब साधन सिद्धा हैं। जो अवतीर्ण होकर आई थीं वे नित्यसिद्धा परिकर रूपा गोपियाँ हैं।

यहाँ लेखक कहता है कि जिन को वेद की ऋचायें आत्माराम कहती हैं। उन्हीं के साथ स्वयं रमण करने के लिये तप किया । और रास में प्रवेश पाया। यह ब्रह्म की परिभाषा को बदलने वाली भक्ति की ही एकमात्र महिमा है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाको कह अज सोइ ब्रज, नँदनन्दन बनि आय।
ग्वालन जूठन खात लखि, विधि बुधि गई भरमाय॥ ९८॥

भावार्थ - जिस ब्रह्म को वेदों ने बार-बार अजन्मा बताया है। वही ब्रह्म ब्रज में नँदनंदन बनकर आया है। वही ब्रह्म, अँगूठा छाप ग्वाल बालों का जूठन खाने में विभोर हो रहा है और यह सब देखकर ब्रह्मा अपनी बुद्धि का होश खो रहा है।

व्याख्या - भागवत में ब्रह्मा मोह की कथा प्रख्यात है। एक बार ब्रह्मा ब्रज में गया। वहाँ देखा कि श्रीकृष्ण सखाओं के साथ मंडल बना कर बैठे हैं एवं सब कलेवा खा रहे हैं। स्वयं श्रीकृष्ण सखाओं के मुख से छीन छीनकर जूठा ग्रास खा रहे हैं। यह देखकर ब्रह्मा ने सोचा कि यह ब्रह्म नहीं हो सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः परीक्षा के हेतु ग्वाल बाल, गाय बछड़े चुरा ले गया। पुनः आकर देखा कि सब वैसे के वैसे ब्रज में भी हैं। अस्तु- श्रीकृष्ण ने तब अपना परिचय दिया। ब्रह्मा का मोहभंग किया। यह वही ब्रह्म है जिसे वेद अजन्मा कहता है। किंतु वेद यह भी कहता है कि दिव्य जन्म वाला भी है। यथा -

अजायमानो बहुधा विजायते।

(पुरुषसूक्त)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

(गीता ४-९)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

(गीता ४-६)

सो अज प्रेमभगति वश कौशल्या के गोद।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाकी याचत शरण सब, विधि हरि हर उनमान।
सोइ यशुमति की गोद हित, लोटत रोदन ठान।। ९९ ।।

भावार्थ - जिन भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ब्रह्मा, विष्णु, शंकर सरीखे भगवान् भी चाहते हैं। वही सर्वशरण्य ब्रह्म श्रीकृष्ण यशोदा मैया की गोद की शरण पाने के हेतु रोता हुआ ब्रजभूमि पर लोट रहा है।

व्याख्या - ब्रह्मादिक भगवत्स्वरूप, श्रीकृष्ण के अभिन्न स्वांश हैं। प्रत्येक अंश अपने अंशी की शरण चाहते हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण की गोद रूपी शरण पाने के लिये ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी सदा लालायित रहते हैं। वही ब्रह्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण यशोदा मैया की गोद रूपी शरण पाने के लिये याचना करते हैं। जब मैया डाँट देती है तो रोते हुए पृथिवी पर लोटने लगते हैं। तब मैया गोद में ले लेती है। इस दृश्य को एक बार नारद जी ने भी देखा और कहा – यथा –

किं ब्रूमस्त्वां यशोदे कति कति सुकृतक्षेत्रवृन्दानि पूर्वम्,
गत्वा कीदृग्विधानैः कति कति सुकृतान्यर्जितानि त्वयैव।
नो शक्रो न स्वयंभूर्न च मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादम्,
तत्पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपत्क्रोडमारोढुकामम्॥

(सूक्ति)

यह रागात्मिका भक्ति का चमत्कार है। यदि कोई इस रस को चाहे तो रागानुगा भक्ति करनी होगी।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

जाकी माया ते नचे, योगी यती महान।
नचे सोइ करताल पै, ब्रजवीथिन वनितान॥ १००॥

भावार्थ – जिसकी बहिरंगा शक्ति गुणमयी दैवी माया से बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र भी काँपते हैं एवं माया के इशारे पर नाचते हैं। उसी ब्रह्म को ब्रज में ब्रजगोपियां अपने हाथों की तालियों पर नचा रही हैं।

व्याख्या – हम पूर्व में बार-बार बता चुके हैं कि श्रीकृष्ण की माया से महानतम ज्ञानी योगी तपस्वी भी साधना द्वारा उत्तीर्ण नहीं हो सकते।

जग पेखन सब देखन वारे विधि हरि शंभु नचावन हारे
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा और तुमहिं को जाननिहारा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिव चतुरानन देखि डेराहीं, अपर जीव केहि लेखे माहीं।
शिव विरंचि कहं मोहई, को है बपुरा आन।
इत्यादि।

अर्थात् जिन भगवान् की माया के इशारे पर भगवान् को छोड़कर सभी नाचते हैं। उन सर्वशक्तिमान भगवान् को ब्रजवीथियों में ब्रजवनितायें अपनी करतालियों पर बारम्बार नचाती हैं और वह विभोर होकर नाचता है। यह समर्था रति का चमत्कार है। एक गोपी कहती है। यथा –

निर्मंच्छनं तव नयाम कुलेश लाल्य।
बाल्याति मोहन बलानुज नृत्य नृत्य॥
इत्यंगनाभिरसकृत्थिथिथीत्थिथीत्थी।
क्लृप्तेन तालवलयेन हरिर्निनर्त॥

अर्थात् भक्ति के संकेत पर ब्रह्म विभोर होकर नाचता है।

राधे राधे राधे राधे राधे राधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्वितीय इक तत्व है, राधा तत्व प्रधान।
याको दूजो रूप है, स्वयं कृष्ण भगवान॥ १॥

जोइ राधा सोइ कृष्ण हैं, इनमें भेद न मान।
इक हैं ह्लादिनि शक्ति अरु, शक्तिमान इक जान॥ २॥

शक्तिमान की शक्तियाँ, अगनित यदपि बखान।
तिन महँ 'माया, 'जीव, अरु, 'परा, त्रिशक्ति प्रधान॥ ३॥

जीव तटस्था शक्ति पर, माया कर अधिकार।
वस्तुतस्तु यह दास है, स्वामी नंदकुमार॥ ४॥

कृष्ण बहिर्मुख जीव कहँ, माया करति अधीन।
ताते भूल्यो आपु कहँ, बन्यो विषय-रस-मीन॥ ५॥

अंतरंग है परा जो, सर्व समर्थ कहाय।
अति विचित्र गति परा की, मायापतिहुँ नचाय॥ ६॥

माया है जड़ शक्ति पै, ज्ञानिहुँ पार न पाय।
याको कारन स्वयं हरि, याको प्रेरक आय॥ ७॥

कर्म, योग, अरु ज्ञान सब, साधन यदपि बखान।
पै बिनु भक्ति सबै जनु, मृतक देह बिनु प्रान॥ ८॥

प्रथम साधना भक्ति करु, तब मन निर्मल होय।
मिलइ विशुद्धा भक्ति तब, गुरु अनुकंपा तोय॥ ९॥

सब साधन जनु देह सम, रूपध्यान जनु प्रान।
खात गीध अरु स्वान जनु, कामादिक शव मान॥ १०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जग महँ सुख दुख दोउ नहिँ, अस उर धरि ले ज्ञान।
सुख माने दुख मिलत है, सुख न जगत महँ मान॥ ११॥

जग विराग हो तितनोइ, जितनोइ हरि अनुराग।
तब हो हरि अनुराग जब, गुरु चरनन मन लाग॥ १२॥

जग सों विमुख होय जब, साँचो सद्गुरु पाय।
करत सतत सतसंग तब, हरि सनमुख ह्वै जाय॥ १३॥

हरि अनुराग विराग जग, आपुहिँ आपु न होय।
मन ते भजन किये बिना, भक्ति न पावे कोय॥ १४॥

साँचो दास न कबहुँ चह, पाँचहुँ मुक्ति बलाय।
चहइ युगल सेवा सदा, तिन सुख सुखी सदाय॥ १५॥

जो स्वामी सौं चहइ कछु, सो नहिँ दास कहाय।
सोउ स्वामी न कहाय जो, दासहिँ आस लगाय॥ १६॥

हरि को नाम रूप गुन, हरिजन नित्य निवास।
सबै एक हरि रूप हैं, सब मैं सबको वास॥ १७॥

सबै शक्ति हैं नाम में, मन! निशिदिन आराध।
पै नहिँ शक्तिन लाभ तिन, किये नाम अपराध॥ १८॥

बंधन और मोक्ष का, कारण मनहि बखान।
याते कौनिउ भक्ति करु, करु मन ते हरिध्यान॥ १९॥

राम नाम सब सत्य कह, जब लौँ जात मसान।
लौटत ही पुनि जगत कहँ, सत्य मान धनि ज्ञान॥ २०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन रूप श्रीकृष्ण को, वेदव्यास बताय।
ब्रह्म और परमात्मा, अरु भगवान कहाय॥ २१॥

सर्वशक्ति संपन्न हो, शक्ति विकास न होय।
सत चित आनँद रूप जो, ब्रह्म कहावे सोय॥ २२॥

सर्वशक्ति संयुक्त हो, नाम रूप गुण होय।
लीला परिकर रहित हो, परमात्मा है सोय॥ २३॥

सर्वशक्ति प्राकट्य हो, लीला विविध प्रकार।
विहरत परिकर संग जो, तेहि भगवान पुकार॥ २४॥

ब्रह्म-प्राप्ति-पथ ज्ञान है, परमात्मा-पथ योग।
कृष्ण-प्राप्ति-पथ भक्ति है, अधिकारी सब लोग॥ २५॥

ज्ञानी अरु योगी लहैं, निज स्वरूप को ज्ञान।
हरि स्वरूप जाने नहीं, माया माहिं भुलान॥ २६॥

ज्ञानी अरु योगी जबै, कृष्ण-भक्ति उर आन।
कृष्ण कृपा ते ही तबै, पावे ब्रह्म ज्ञान॥ २७॥

कोटिन ज्ञानिन मध्य कोउ, प्रेम-सुधा-रस पाय।
जिमि सनकादि शुकादि मन, ब्रज-रस रहे डुबाय॥ २८॥

कृष्ण-कृपा बिनु जाय नहिं, माया अति बलवान।
शरणागत पर हो कृपा, यह गीता को ज्ञान॥ २९॥

जिमि हो शीत निवृत्त तिन, जिन ढिग अगिनि सिधार।
तिमि हो कृपा तिनहिं जिन, मन जाये हरि द्वार॥ ३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन! मैं को मत छोड़ तू, दास जोड़ दे और।
मेरा भी रख साथ में, सो रसिकन सिरमौर॥ ३१॥

समुझ! समुझ सों श्याम को, समुझ सका नहिँ कोय।
समुझ मिलइ जब श्याम की, समुझ सकै बस सोय॥ ३२॥

श्याम समुझ से श्याम को, समुझ सके सब कोय।
श्याम समुझ तब मिलइ जब, समुझ समर्पित होय॥ ३३॥

जैसे प्राकृत देह की, आत्मा 'जीव, बखान।
ऐसे ही या जीव की, आत्मा 'श्याम, सुजान॥ ३४॥

सत्य अहिंसा आदि मन! बिन हरिभजन न पाय।
जल ते घृत निकले नहीं, कोटिन करिय उपाय॥ ३५॥

मन माया ते ही बन्यो, माया ते संसार।
याते मन भावत सदा, यह संसार असार॥ ३६॥

कोउ कह तजु सब काम कोउ, कह भजु सुंदर श्याम।
हौं कह दोउ इक संग करु, तब हो पूरन काम॥ ३७॥

काम क्रोध मद लोभ कहँ, मन मूरख! मत छोड़।
रसिक शिरोमणि श्याम ढिंग, दे इन को मुख मोड़॥ ३८॥

सब साधन संपन्न कहँ, पूछत सब संसार।
साधनहीन प्रपन्न कहँ, पूछत नंदकुमार॥ ३९॥

'मैं' 'मेरा', दोनों बहे, ज्ञानिन ज्ञान मझार।
'मैं' 'मेरा', दोनों रहे, प्रेमिन के दरबार॥ ४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देश काल नहिँ नियम कछु, नहिँ कछु शिष्टाचार।
सरल हृदय नहिँ छल कपट, प्रेमपंथ बलिहार॥ ४१॥

'जिवु' 'माया', दुइ शक्ति हैँ, शक्तिमान भगवान।
शक्तिहिँ भेद अभेद भी, शक्तिमान ते जान॥ ४२॥

आत्मा बिच परमात्मा, करत निवास सदाय।
याते कहुँ कहुँ आत्मा, परमात्मा कहलाय॥ ४३॥

लखत रहत नित भक्ति मुख, कर्म, योग, अरु ज्ञान।
अति स्वतंत्र है भक्ति पथ, वेद पुरान बखान॥ ४४॥

ब्रह्मलोक पर्यंत सुख, अरु मुक्तिहुँ सुख त्याग।
तबै धरहु पग प्रेम पथ, नहिं लगि जैहैँ दाग॥ ४५॥

सेवक सेवा ही चहइ, सेव्य श्याम रुचि जान।
तिन सुख महँ रह सुखी नित, उर न कामना आन॥ ४६॥

ज्ञान बिना हो भगति पै, भगति बिना नहीं ज्ञान।
भगति बिना हो ज्ञान जो, लावत उर अभिमान॥ ४७॥

बिनु हरि कृपा न जाति यह, माया अति बलवान।
ज्ञानिन ब्रह्म न कछु कर, पुनि किमि कर कल्यान॥ ४८॥

बिनु हरि कृपा न पाइ सक, ज्ञानिहुँ ब्रह्मज्ञान।
ब्रह्म अकर्ता वेद कह, सोचहु मनहिँ सुजान॥ ४९॥

संत संग सत्संग करु, तिन सेवहु दिन रात।
श्रद्धा, रति, अरु भक्ति सब,आपुहिँ तेहि मिलि जात॥ ५०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म वृहत्वात् अस बड़ा, जाको आदि न अंत।
बड़ा बृंहणत्वात् अस, औरन करे अनंत॥ ५१॥

ब्रह्म एक मधु रूप है, एक भ्रमर उनमान।
एक रूप रस देत है, एक आपु कर पान॥ ५२॥

करन चहत आलिंगन, आपुहिँ आपु निहार।
जन-मन-मोहन ही नहीं, निज मन-मोहन हार॥ ५३॥

चितवत चित करषत जिते, चित समाधि महँ लाय।
औरन की का बात कह, शिव गोपी तनु पाय॥ ५४॥

सृष्टि पूर्व हरि देखत, सोचत मृदु मुसकात।
सगुण रूप साकार नित, वेद विदित विख्यात॥ ५५॥

कारन हरि अवतार को, कृपा अकारन जान।
अपर जिते कारन कहे, तिनहिँ गौण करि मान॥ ५६॥

हरि हरिजन के कार्य को, कारण कछु न लखाय।
पर उपकार स्वभाववश, करत कार्य जग आय॥ ५७॥

हरि हरिजन के आचरन, मायामय मत जान।
उनके चरित अलौकिक, माया क्रीड़ा मान॥ ५८॥

हरि हरिजन के अटपटे, चरित न बुध लखि पाय।
अति विचित्र गति दुहुँन की, रसिकहिँ समुझि सकाय॥ ५९॥

दुइ माया इक विद्या, अपर अविद्या तात।
जाति अविद्या ज्ञान ते, विद्या भक्तिहिँ जात॥ ६०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान मरै दै मुक्ति पद, कर्म मरै दै स्वर्ग।
अमर रहै इक भक्ति ही, चह न स्वर्ग अपवर्ग॥ ६१॥

पंच तत्व अरु अहं का, भेदन करि दे ज्ञान।
पै बिनु भक्ति न करि सके, भेदन प्रकृति महान॥ ६२॥

अति विरक्त कहँ ज्ञान है, अति आसक्तहिँ कर्म।
जीवमात्र कहँ भक्ति है, यह अधिकारी मर्म॥ ६३॥

कर्म, ज्ञान अरु योग को, जो भी फल श्रुति गाय।
अनायास बिनु माँगे, भगत सकल फल पाय॥ ६४॥

सकल धर्म को मूल हैं, एक कृष्ण भगवान।
मूल तजे सब शूल हैं, कर्म, योग अरु ज्ञान॥ ६५॥

जो हरि सेवा हेतु हो, सोई कर्म बखान।
जो हरि भगति बढ़ावे, सोई समुझिय ज्ञान॥ ६६॥

हरि निमित्त जो पाप कर, सोऊ पुण्य कहाय।
हरि तजि जो कर पुण्य तो, आप पाप बनि जाय॥ ६७॥

पुण्य देत फल नश्वर, पाप नरक लै जाय।
दोउन तजि जो हरि भजे, सोइ परम पद पाय॥ ६८॥

भगति एक ऐश्वर्य अरु, इक माधुर्य कहाय।
पै नीरस ऐश्वर्य रस, ब्रज रसिकन न सुहाय॥ ६९॥

सबै सरस रस द्वारिका, मथुरा अरु ब्रज माहिँ।
मधुर, मधुरतर, मधुरतम, रस ब्रजरस सम नाहिँ॥ ७०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिमि जलनिधि महँ जल कहत, अरु जलनिधि जल रूप।
तिमि हरि मधि आनंद अरु, हरि आनंद स्वरूप॥ ७१॥

सोच साँच उपकार निज, सोच न पर उपकार।
करि ले प्यार मुरारि ते, तजि दे अपर विचार॥ ७२॥

ब्रह्म श्याम हैं सूर्य सम, जीव किरन अनुहार।
दैवी माया गुणमयी, जानु रूप अंधियार॥ ७३॥

सौ बातन की बात इक, धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा-वासना, यह सौ ज्ञानन ज्ञान॥ ७४॥

मन मनमोहन भजन कर, सजन सनेही मान।
बिनुहिं बुलाये आइहैं, जग विराग अरु ज्ञान॥ ७५॥

प्राकृत मन ते होत है, ज्ञानिन प्राकृत ध्यान।
भक्तन मन हरि कृपा ते, होत दिव्य सच मान॥ ७६॥

हरि विरही विरहाग ते, पंचकोश जरि जाय।
त्रिगुण त्रिकर्म त्रिदोष सब, आपुहिं जाय नसाय॥ ७७॥

हरि संयोग वियोग महँ, बड़ो वियोग बताय।
कारण यह कि वियोग महँ, कण-कण श्याम लखाय॥ ७८॥

मायाधीन मलीन मन, है अनादि कालीन।
हरि विरहानल धोय जल, करु निर्मल बनि दीन॥ ७९॥

राधे राधे बोल नित, करु राधे को ध्यान।
ऐहैं निज गोलोक तजि, भाजत श्याम सुजान॥ ८०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम मेरे थे रहोगे, यह श्रुति वचन तिहार।
अधम उधारन नाथ पुनि, काहे मोहिँ बिसार॥ ८१॥

हौँ मानत हौं सदा को, हौँ पातक अवतार।
अधम उधारन विरद पर, तुम तो करहु विचार॥ ८२॥

नाम पतित पावन सुनि, निर्भय ह्वै किय पाप।
यामें दोष बताउ मम, दोषी तो हैं आप॥ ८३॥

मन हरि में तन जगत में, कर्मयोग तेहि जान।
तन हरि में मन जगत में, यह महान अज्ञान॥ ८४॥

यद्यपि हरि गुरु एक हैं, एक ज्ञान आनंद।
तदपि सृष्टि कर केवल, ब्रह्म सच्चिदानंद॥ ८५॥

हरि सुत कहँ हरिदासी, जड़ माया दुख देत।
बड़ अचरज पितु लखत नित, तबहुँ न सुत सुधि लेत॥ ८६॥

हरिदासी हैँ मुक्ति सब, सबै जीव हरिदास।
महामूढ़ जो स्वामि तजि, कर दासी की आस॥ ८७॥

वंदनीय है उपनिषत, यामें ज्ञान महान।
श्याम प्रेम बिनु ज्ञान सो, प्राणहीन तनु जान॥ ८८॥

मिलन पाय पिय विरह भय, विरह पाय नहिँ चैन।
दुहुँन भाँति अस दिव्य दुख, पाव रसिक दिन रैन॥ ८९॥

अधम उधारन नाम सुनि, उर आशा बढ़ि जात।
भक्ति वश्य सुनि नाम पै, मन महँ अति डरपात॥ ९०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काहे खोजत ब्रह्म को, श्रुतिन ऋचन भरमाय।
यशुमति कर ऊखल बंध्यो, देखहु ब्रज महँ जाय॥ ९१॥

ब्रह्म निरंजन जनि भनो, सुनहु खोलि निज कान।
अंजन बनि डोलै सदा, पाछे ब्रज बनितान॥ ९२॥

जो नहीं जात बुलायेहु, शुक सनकादिक ध्यान।
बिनुहिं बुलाये जात सोइ, घर घर ब्रजवनितान॥ ९३॥

जाके अगनित गुनन को, गावत वेद ऋचान।
'दारी के, गारी सुनन, सोइ छेड़त सखियान॥ ९४॥

जाको कहि निर्लेप अस, पुनि पुनि वेद पुकार।
जाकर देखहु मधुपुरी, सोइ कुब्जा को यार॥ ९५॥

जाके भय भयभीत हो, महाकाल बरजोर।
जरासन्ध के भय सोई, भाजि बन्यो रणछोर॥ ९६॥

जाको आत्माराम कहि, वेद ऋचान बखान।
सोइ गोपिन सँग रास कर, गोपिहुँ वेद ऋचान॥ ९७॥

जाको कह अज सोइ ब्रज, नँदनन्दन बनि आय।
ग्वालन जूठन खात लखि, विधि बुधि गइ भरमाय॥ ९८॥

जाकी याचत शरण सब, विधि हरि हर उनमान।
सोइ यशुमति की गोद हित, लोटत रोदन ठान॥ ९९॥

जाकी माया ते नचे, योगी यती महान।
नचे सोइ करताल पै, ब्रजवीथिन वनितान॥ १००॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज का जन्म सन् १९२२ ई० में शरत्पूर्णिमा की शुभ रात्रि में भारत के उत्तर प्रदेश प्रान्त के प्रतापगढ़ जिले के मनगढ़ ग्राम में सर्वोच्च ब्राह्मण कुल में हुआ।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मनगढ़ एवं कुन्डा में सम्पन्न हुई। पश्चात् इन्होंने इन्दौर, चित्रकूट एवं वाराणसी में व्याकरण, साहित्य तथा आयुर्वेद का अध्ययन किया।

१६ वर्ष की अत्यल्पायु में चित्रकूट में शरभंग आश्रम के समीपस्थ बीहड़ वनों में एवं वृन्दावन में वंशीवट के निकट जंगलों में वास किया।

श्रीकृष्ण प्रेम में विभोर भावस्थ अवस्था में जो भी इनको देखता वह आश्चर्यचकित होकर यही कहता कि यह तो प्रेम के साकार स्वरूप हैं, भक्तियोगरसावतार हैं। उस समय कोई यह अनुमान नहीं लगा सका कि ज्ञान का अगाध, अपरिमेय समुद्र भी इनके अन्दर छिपा हुआ है क्योंकि प्रेम की ऐसी विचित्र अवस्था थी कि शरीर की कोई सुधि बुधि नहीं थी, घंटों घंटों मूर्च्छित रहते। कभी उन्मुक्त अट्टहास करते तो कभी भयंकर रुदन। खाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पीना तो जैसे भूल ही गये थे। नेत्रों से अविरल अश्रु धारा प्रवाहित होती रहती थी, कभी किसी कटीली झाड़ी में वस्त्र उलझ जाते, तो कभी किसी पत्थर से टकरा कर गिर पड़ते। किन्तु धीरे धीरे अपने इस दिव्य प्रेम को गोपन करके श्री कृष्ण भक्ति का प्रचार करने लगे। अब प्रेम के साथ साथ ज्ञान का प्रकटीकरण भी होने लगा।

सन् १९५५ में इन्होंने चित्रकूट में एक विराट दार्शनिक सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें काशी आदि स्थानों के अनेक विद्वान् एवं समस्त जगद्गुरु भी सम्मिलित हुए। सन् १९५६ में ऐसा ही एक विराट संत सम्मेलन इन्होंने कानपुर में आयोजित किया। इनके समस्त वेद शास्त्रों के अद्वितीय, असाधारण ज्ञान से वहाँ उपस्थित काशी के मूर्धन्य विद्वान् स्तम्भित रह गये। उस समय इनके सम्बन्ध में काशी के प्रख्यात पंडित, शास्त्रार्थ महाविद्यालय (काशी) के संस्थापक, शास्त्रार्थ महारथी, भारत के सर्वमान्य एवं अग्रगण्य दार्शनिक, काशी विद्वत्परिषत् के प्रधानमंत्री आचार्य श्री राजनारायण जी शुक्ल 'षट्शास्त्री' ने सार्वजनिक रूप से जो घोषणा की थी, उसका अंश इस प्रकार है– (कानपुर १९-१०-५६)

"काशी के पंडित आसानी से किसी को समस्त शास्त्रों का विद्वान् नहीं स्वीकार करते। हम लोग तो पहले शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारते हैं। हम उसे हर प्रकार से कसौटी पर कसते हैं और तब उसे शास्त्रज्ञ स्वीकार करते हैं। हम आज इस मंच से इस विशाल विद्वन्मंडल को यह बताना चाहते हैं कि हमने संताग्रगण्य श्री कृपालु जी महाराज एवं उनकी भगवद्दत्त प्रतिभा को पहचाना है और हम आपको सलाह देना चाहते हैं कि आप भी इनको पहचानें और इनसे लाभ उठायें।

आप लोगों के लिये यह परम सौभाग्य की बात है कि ऐसे दिव्य वाङ्मय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को उपस्थित करने वाले एक संत आपके बीच में आये हैं। काशी समस्त विश्व का गुरुकुल है। हम उसी काशी के निवासी यहाँ बैठे हुए हैं। कल श्री कृपालु जी के अलौकिक वक्तव्य को सुनकर हम सब नत-मस्तक हो गये। हम चाहते हैं कि लोग श्री कृपालु जी महाराज को समझें और इनके सम्पर्क में आकर इनके सरल, सरस, अनुभूत एवं विलक्षण उपदेशों को सुनें तथा अपने जीवन में उसे क्रियात्मक रूप से उतारकर अपना कल्याण करें।''

इसके पश्चात् इनको काशी विद्वत्परिषत् (भारत के लगभग ५०० शीर्षस्थ शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ विद्वानों की सभा है) ने काशी आने का निमंत्रण दिया। केवल ३४ वर्षीय श्री महाराज जी को वयोवृद्ध विद्वानों के मध्य देखकर कुछ भावुक भक्त कहने लगे-

उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग

श्री कृपालु जी के कठिन संस्कृत में दिये गये विलक्षण प्रवचन को सुनकर एवं भक्तिरस से ओत-प्रोत अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर सभी विद्वान् मंत्रमुग्ध हो गये। उन्होंने स्वीकार किया कि यह केवल वेदों, शास्त्रों, पुराणों के मर्मज्ञ ही नहीं हैं अपितु प्रेम के साकार स्वरूप भी हैं। तब सबने एकमत होकर इनको **''जगद्गुरूत्तम''** की उपाधि से विभूषित किया। उन्होंने स्वीकार किया कि श्री कृपालु जी जगद्गुरुओं में भी सर्वोत्तम हैं।

........धन्यो मान्य जगद्गुरूत्तमपदैःसोऽयं समभ्यर्च्यते।

यह ऐतिहासिक घटना १४ जनवरी सन् १९५७ को हुई। उस समय श्री कृपालु जी की आयु मात्र ३४ वर्ष की थी। ज्ञातव्य है कि जगद्गुरु श्री कृपालु जी पूर्व जगद्गुरुओं के उत्तराधिकारी मात्र नहीं हैं। काशी विद्वत्परिषत् द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्हें विश्व के पाँचवें "मूल जगद्गुरु" की उपाधि से अलंकृत किया गया है। उनके पूर्व केवल चार महापुरुषों को जगद्गुरु की मूल उपाधि प्रदान की गयी थी। अद्वैतवादी जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, विशिष्टाद्वैतवादी जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य, द्वैताद्वैतवादी जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य, द्वैतवादी जगद्गुरु श्री माध्वाचार्य।

अतः वर्तमान काल में जगद्गुरु स्वामी श्री कृपालु जी महाराज विश्व के इतिहास में पंचम जगद्गुरु हैं। ये समन्वयवादी जगद्गुरु हैं अतएव ये पूर्ववर्ती चारों जगद्गुरुओं के दार्शनिक सिद्धान्तों को सही सिद्ध करते हुए अपना समन्वयवादी दार्शनिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। श्री कृपालु जी महाराज के मतानुसार यद्यपि ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग अनेक हैं तथापि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ व सर्वसुलभ मार्ग है। इनके अनुसार **स्वसुखवासनागंधलेशशून्य श्रीकृष्णसुखैक तात्पर्यमयी सेवा** ही प्रत्येक जीव का लक्ष्य है अर्थात् अपने सेव्य के सुख के लिए ही उनकी नित्य निष्काम सेवा प्राप्त करना ही जीव मात्र का परम लक्ष्य है।

सेवक सेवा ही चहइ, सेव्य श्याम रुचि जान।
तिन सुख महँ रह सुखी नित, उर न कामना आन॥

(भक्ति शतक)

राधे राधे गोविंद गोविंद राधे। राधे राधे गोविंद गोविंद राधे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

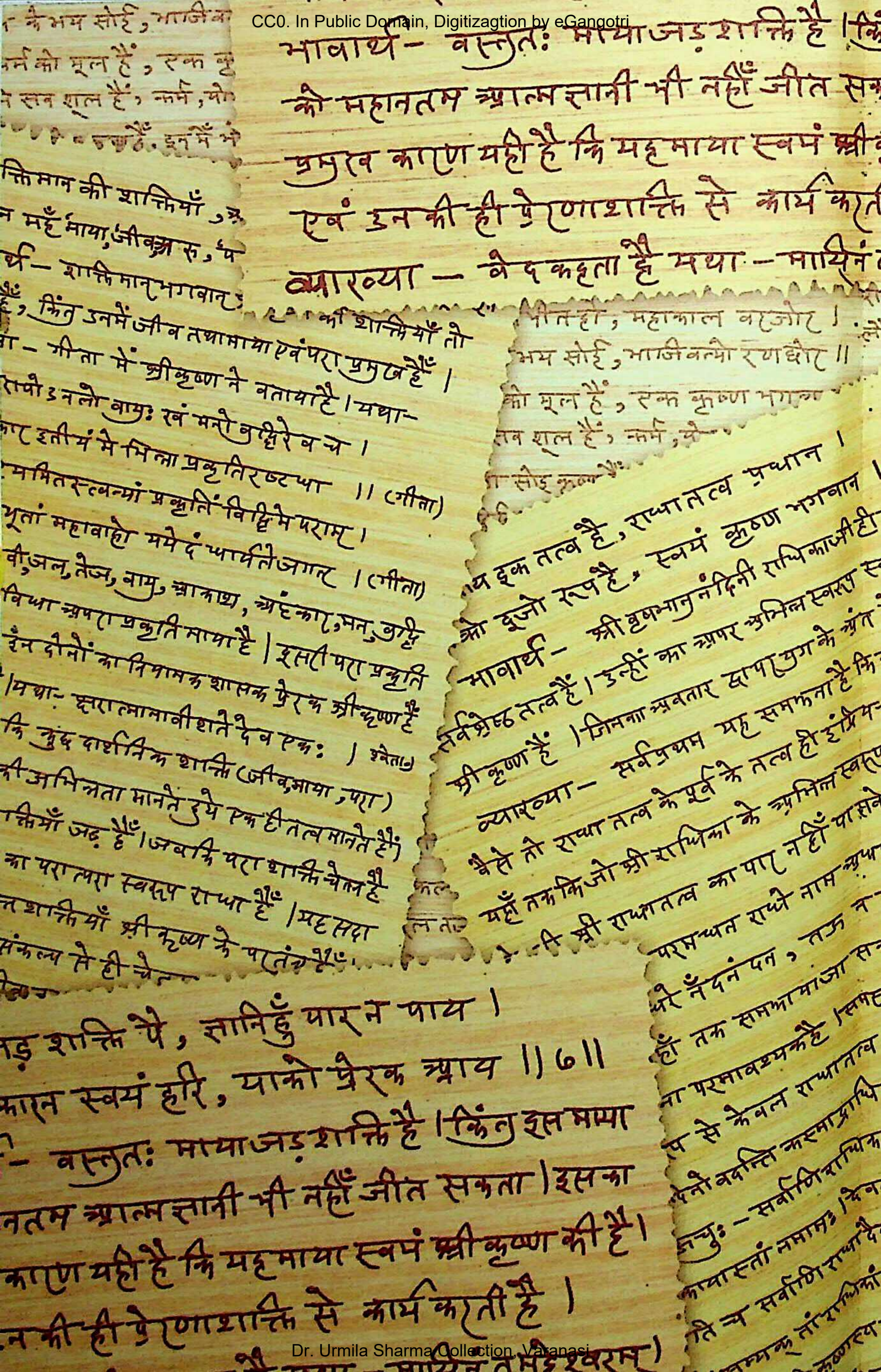

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

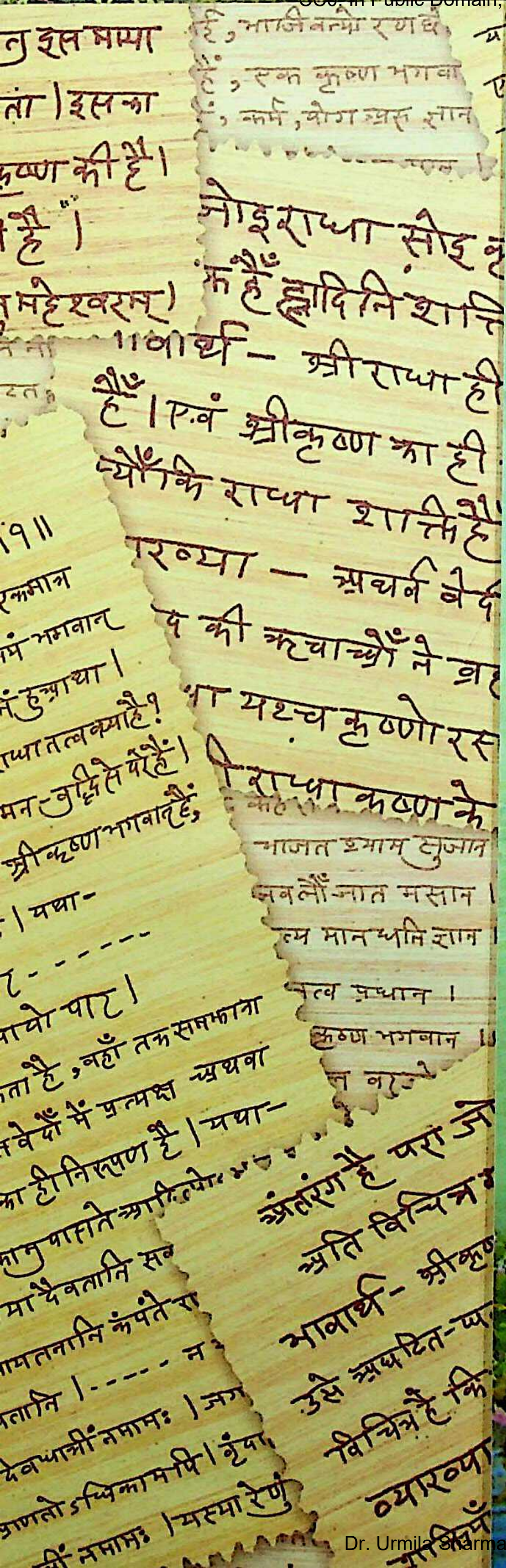

श्री राधाकृष्ण सम्बन्धी भक्ति मार्गीय सिद्धान्तों से युक्त १०० दोहों के रूप में 'भक्ति शतक' एक अनुपम अद्वितीय ग्रन्थ है।

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज ने गूढ़तम शास्त्रीय सिद्धान्तों को भी इतनी सरलता से प्रकट किया है किजनसाधारण भी हृदयंगम कर सकता है। दोहों के साथ साथ उनकी व्याख्या भी लिखकर अचार्य श्री ने अपनी अकारण करुणा का परिचय दिया है अन्यथा दोहों में अन्तर्निहित गूढ़ रहस्यों को समझना लौकिक बुद्धि से सर्वथा अगम्य होता।

अनन्त सिद्धान्तों का यही सार है कि सेव्य श्री कृष्ण सेवा की भावना निरन्तर बढ़ती जाय। यही अन्तिम तत्वज्ञान है।

सौ बातन की बात इक,
धरु मुरलीधर ध्यान।
बढ़वहु सेवा वासना
यह सौ ज्ञानन ज्ञान॥

(भक्ति शतक)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi